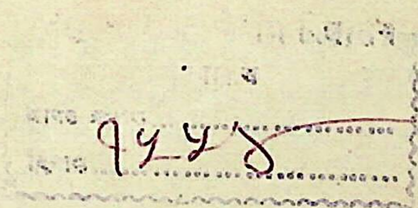
मन्नू भंडारी

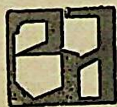
बिना दीवारों के घर

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

बिना दीवारों के घर
(नाटक)



मन्नू भण्डारी



अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०

तृतीय संस्करण : १९७६
मूल्य : पाँच रुपये

इस पुस्तक में सरकार का दिया
हुआ कागज लगाया गया है।

प्रकाशक
अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
२/३६, अन्सारी रोड, दरियागंज दिल्ली

शान प्रिण्टर्स
नव प्रभात प्रिंटिंग प्रेस,
वलवीर नगर दिल्ली, से मुद्रित

सम्पादकीय

'बिना दीवारों के घर' नाटक आज से लगभग आठ-नौ वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। अनेक स्थानों पर सफल मंचन और चर्चाओं का केन्द्र रहा। एकाध-वर्ष में ही संस्करण समाप्त हो गया। तब से लेखिका की बराबर इच्छा रही है कि इसका संशोधन-सम्पादन, यहाँ तक कि रचनात्मक अपेक्षा हो तो पुनर्लेखन किया जाये। लेकिन शायद दस साल पुराने रचना-धरातल पर फिर से लौट पाना—(या उस स्तर से विकास न कर पाना ?) हरेक के लिए संभव नहीं होता। अतः निर्णय किया गया कि 'बिना दीवारों के घर' उसी रूप में प्रकाशित हो और यदि आवश्यकता हो तो नया नाटक ही लिख डाला जाये।

पात्र

अजित	सेठ संपतलाल
शोभा	शुक्ला
मीना	श्रीमती शुक्ला
जयंत	चावला
जीजी	श्रीमती चावला
वंसी	चौधरी
नौकर	श्रीमती चौधरी
डॉक्टर	

प्रथम-अंक

(पहला दृश्य)

(पर्दा उठता है। अजित का ड्राइंग-रूम। अस्त-व्यस्त-सा। सवेरे के आठ बजे हैं। भीतर से तानपूरे पर आलाप लेता हुआ नारी-स्वर सुनाई देता है। अजित कुछ गुन-गुनाता हुआ प्रवेश करता है। चेहरे पर हजामत का साबुन लगा है, हाथ में खाली रेज़र। इधर-उधर कुछ ढूंढ़ता है, फिर खिजलाए-से स्वर में पुकारता है।)

अजित : शोभा-ऽ-ऽ—(भीतर से गाने का स्वर पूर्ववत आता रहता है। आवाज़ को सप्तम-स्वर पर ले जाकर) श्रीमती शोभा देवी जी-ऽऽ—(भीतर गाने का स्वर बंद हो जाता है।)

(शोभा का प्रवेश)

शोभा : क्या है ? क्यों घर सिर पर उठा रखा है ?

अजित : मैं पूछता हूं, इस घर में कभी कोई चीज़ ठीक जगह पर भी रहती है या नहीं ?

शोभा : क्या चाहिए आपको ?

अजित : एक घण्टा हो गया कहीं ब्लेड का पता नहीं। और तुम हो कि वहाँ बैठकर अलाप रही हो—

शोभा : ओ हो-ऽ-ऽ ! तो अब आपकी चीज़ें ठिकाने पर रखने का काम भी मेरा ही है ? (दराज़ से ब्लेड निकालकर देती है।)

अजित : अरे, मेरी चीज़ तुम्हारी चीज़ क्या होता है ? सारी घर की चीज़ें हैं, और घर की हर चीज़ ठिकाने पर है या नहीं, यह देखना औरत का काम है। बोलो, है या नहीं ? बोलो—बोलो—

शोभा : अच्छा, मान लिया, है। अब ज़रा यह भी बता दीजिए कि घर के आदमी का क्या काम है ? घर की हर चीज़ को इधर-उधर फेंकते फिरना और फिर दुनिया-भर का शोर मचाना, क्यों ?

अजित : हाँ-हाँ ! (हँसता है) शोभा, समझती तुम सब हो ! अरे, बीवी अपनी बड़ी समझदार है (भीतर से आवाज़ आती है : ममी-ऽ-ऽ—ममी; हमारे मोज़े कहाँ रखे हैं ? (शोभा अजित को देखती है)

शोभा : लो, अब बिटिया के मोज़े नहीं मिल रहे।

अजित : उसे समझाओ, भई, कि अपनी चीज़ सम्भालकर रखा करे। यह शिक्षा तो तुमको देनी चाहिए उसे कम से कम।

शोभा : (जाते-जाते) अच्छा जी, तो आप यह कह रहे हैं ? लापरवाही से चीज़ें रखने में वह आपकी बिटिया नहीं, गुरु है गुरु। (प्रस्थान)

(अजित जल्दी-जल्दी हजामत समाप्त करता है, नहाने के लिए भीतर जाने लगता है। शोभा का प्रवेश।)

अजित : (हजामत का सामान उठाते हुए) देखो, मैं अपना सामान अपने-आप साफ़ करके रख रहा हूँ।

शोभा : बड़ी मेहरबानी आपकी।

अजित : तुम ज़रा कमरा ठीक कर दो। हो सकता है मिस्टर अग्रवाल को मुझे अपने साथ ही लाना पड़े। वैसे मैं लाऊँगा नहीं, फिर भी—(प्रस्थान)

शोभा : (कमरा ठीक करते हुए) चाहती हूँ सवेरे कम से कम घंटा-आधा-घंटा रियाज़ के लिए ही निकाल लूँ, सो भी नहीं हो पाता। यहाँ किसी से भी तो अपना काम नहीं होता। घर का काम देखो, कॉलेज का काम देखो।— ऊपर से नौकर और चला गया!

(अजित प्रवेश करता है। बिना बटनों के कफ़ लटक रहे हैं, सामने के बटन भी खुले हैं।)

अजित : अरे शोभा, कमीज़ में बटन भी लगाकर नहीं रखे! देखना, ज़रा जल्दी से—

शोभा : (बटन लगाते हुए) हद है! यानी कि आप अपने बटन भी नहीं लगा सकते?

अजित : अब तुम चाहे कुछ भी कह लो, पर इस सबके लिए ज़िम्मेदार तुम ही हो, समझीं!

शोभा : हाँ, सो तो हूँ ही। दुनिया के किसी भी कोने में कोई भी खराब काम हो, ज़िम्मेदार तो शोभा ही होगी। घर का काम ठीक समय पर नहीं होता, मैं ज़िम्मेदार; तुम अपना काम नहीं करते, मैं ज़िम्मेदार; अप्पी काम नहीं करती, मैं ज़िम्मेदार; नौकर चला गया, मैं ज़िम्मेदार; नया नौकर नहीं मिल रहा, मैं ज़िम्मेदार; नल का पानी चला जाता है, मैं ज़िम्मेदार—

अजित : अरे, बस बस! मैं तो अपनी बात कह रहा हूँ। जानती हो, मैं अपने होस्टल में व्यवस्था के लिए प्रसिद्ध था? अपना ही नहीं, अपने सब दोस्तों का काम भी

किया करता था। और ये जो जयंत साहब हैं न, जिनका उदाहरण तुम बात-बात में देती हो, इनको क़ायदे से रहना मैंने ही सिखाया है। आज यह अँग्रेज़ी कंपनी में जाकर शेखी चाहे कितनी बघारें, गुरु तो इनका मैं ही रहा हूँ। पर तुमने आकर मुझे एकदम बेकार कर दिया। तीन साल पहले तक वह खातिर होती थी हमारी कि अजित साहब चौपट। तुम्हीं ने बिगाड़ा और अब तुम्हीं नाराज़ होती हो। (गाने के स्वर में) शोभाजी ने निकम्मा कर दिया, वरना हम भी आदमी थे काम के।

शोभा : (मुस्कराते हुए) पता नहीं किस ज़माने में तुम काम के थे। मैं तो आई हूँ तब से ऐसा ही बेकार देख रही हूँ। (कुछ ठहरकर) यह सच है कि अब मैं तुम्हारी उतनी देखभाल नहीं कर सकती। पहले तुम्हारे और घर के सिवाय और कोई काम ही नहीं था, सो सारे दिन उसी में लगी रहती थी। अब वह सब काम कॉलेज के साथ सम्भव नहीं होता। नौकरों का काम तो तुम देख ही रहे हो!

अजित : तो, मैं क्या करूँ? मुझसे भी अब यह सब काम नहीं होता।

शोभा : ज़रा-सा ध्यान देने की बात है। जब मैं पढ़ती थी तब तो तुम काफ़ी काम किया करते थे। अप्पी को भी सम्हाल लिया करते थे, कितना हाथ बँटाते थे मेरा, आखिर अभी ही क्या हो गया है?

अजित : तब की बात ही और थी। मैं तो चाहता हूँ वे दिन फिर लौट आएँ। आजकल आधी जान तो यह कम्बख्त ऑफिस ही निकाल लेता है। तनख्वाह अच्छी भले ही देते हों, पर तेल भी पूरा निकाल लेते हैं। नौकरी तो

किसी अँग्रेज़ी कंपनी में मिले तब है मज़ा। साला जयंत ऐश करता है। अच्छा, अभी तो चला।

(शोभा कमरा ठीक करके भीतर जाती है। पर दूसरे ही क्षण घंटी बजती है तो आकर दरवाजा खोलती है। मीना का प्रवेश।)

शोभा : (अपार आश्चर्य से) अरे मीना! सुना था कि तुम कलकत्ता आई हो। बस, देख रहे थे कि हमें याद करती हो या नहीं?

मीना : देखो, मैंने तो फिर भी याद कर ही लिया। तुम लोग तो शायद कभी भूलकर भी याद नहीं करते, क्यों?

शोभा : नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है, मीना। कितनी ही बार चर्चा चलती है। पर अब तुम्हारा कोई निश्चित पता हो तब तो तुम्हारे साथ संपर्क भी रखा जाए। परसों जयंत ने तुम्हारे यहाँ आने की खबर दी थी। याद तो वे भी अक्सर करते हैं तुम्हें। (अर्थ-भरी निगाहों से देखती है)

मीना : पहले की तरह जयंत अब भी यहाँ आते हैं? कैसे हैं वे?

शोभा : हाँ, आते ही हैं, आज तो उनके अभी आने की बात है। आ जाएँ तो देख लेना खुद ही!

मीना : अजित क्या ऑफ़िस चले गए?

शोभा : नहीं, किसी से मिलने गए हैं, दस तक लौट आएँगे। तब तक तो तुम बैठोगी?

मीना : नहीं, आज नहीं। अब तो मैं तुम्हें गाने का निमंत्रण देने आई हूँ। सुना, तुमने हमारे कार्यक्रम में गाने से इंकार कर दिया, इसीलिए खुद बुलाने आना पड़ा।

शोभा : चलो इसी बहाने आई तो सही। (एक क्षण ठहरकर) क्या बताऊँ मीना, गाने को इसलिए मना कर दिया था कि आजकल रियाज़ तो कर नहीं पाती ज़रा भी। अब

इन चीज़ों में आप एक बार ढील डाल दें तो फिर कुछ नहीं होता।

मीना : वाह, मैं तो रेडियो पर अक्सर ही तुम्हारे गाने सुनती हूँ। देखो, गाना तुमको गाना है, मैं कोई बहाना नहीं सुनूँगी। रेडियो पर जब गा सकती हो तो हमारे कार्यक्रम में क्यों नहीं गा सकतीं ?

शोभा : रेडियो की तुमने भली चलाई। वहाँ एक बार नाम लिख जाए तो बस फिर अपने आप बुलावा आता रहता है। फिर कुछ गीत उन लोगों ने रिकार्ड भी कर रखे हैं और मैं तो वहाँ भी मना कर दूँ, पर जयंत इस बुरी तरह पीछे पड़ जाते हैं—यों समझ लो एक तरह मजबूर कर देते हैं।

मीना : हमेशा जयत मजबूर करते हैं, आज मैं मजबूर करने आई हूँ। मेरी इतनी-सी बात नहीं मानोगी ?

शोभा : दस बजे तक तुम ठहर जाओ। अजित आ जाएँ तो तुम खुद उनसे कहना।

मीना : यह क्या ? तुम्हें अजित की इजाज़त चाहिए।

शोभा : बस कुछ ऐसा ही समझ लो। इन्हें मेरा इधर-उधर जाना पसंद नहीं है। और मैं नहीं चाहती कि ज़रा-सी बात के लिए—

मीना : (बात काटकर) क्या कह रही हो तुम ? यह कब से हो गया ? अजित ने इतने शौक़ से तुम्हें गाना सिखलाया, खदेड़-खदेड़ कर तुम्हें खुद कार्यक्रमों में भेजा करते थे। जब तक तुम्हारा गाना नहीं हो जाता था, तुमसे ज़्यादा वे घबराये रहते थे !

शोभा : (सोचते हुए) हाँ, वह सब कभी था। आजकल इन्हें पसंद नहीं है यह सब। अजित शायद पहले से बहुत बदल गये

हैं। कभी-कभी लगता है, शायद मैं बदल गई हूँ।

मीना : तुम तो मुझे सचमुच बदली हुई लग रही हो। क्या बदला है सो तो नहीं बता सकती, पर पहले से कुछ ज्यादा सजीली ज़रूर हो गई हो। कॉलेज में पढ़ा रही हो न आजकल ? और हाँ, अप्पी कहाँ है ? बड़ी हो गई होगी अब तो खूब ?

शोभा : हाँ, छः साल की हो गई। (उठकर फ़ोटो दिखाती है) यह है उसकी नई तस्वीर !

मीना : इतनी बड़ी हो गई ! सूरत तो तुम जैसी है बिल्कुल।

शोभा : अच्छा, तुम पाँच मिनट बैठो, मैं ज़रा चाय बना कर ले आऊँ। आजकल नौकर तो है नहीं, इसीलिए !

मीना : चाय-वाय तुम छोड़ो, मुझे अभी-अभी लौटना है। तुम गाने का वादा कर लो, मेरी खातिर तो उसी से हो जाएगी !

शोभा : वाह, वाह ! क्या कहने तुम्हारे ! जैसे मैं तुम्हें बिना चाय पिलाए जाने ही दूँगी न ? तुम दो मिनट बैठो, बस अभी लाई।

(शोभा उठकर जाती है। मीना कुछ देर अप्पी की तस्वीर देखती है। फिर उठकर मेंटलपीस पर रखी और तस्वीरें देखती है। दरवाज़े की ओर उसकी पीठ है। जयंत प्रवेश करता है।)

जयंत : (आधा मंच पार करके) देखा शोभा, मैंने तुम्हारे लिए— (मीना घूमकर पीछे देखती है। जयंत विस्मय से जहाँ का तहाँ खड़ा रह जाता है) ओह, आप है ? (लौटने लगता है)

मीना : आप लौट क्यों पड़े ?

जयंत : मैंने सोचा था कि शोभा है—

मीना : और निकल गई मीना ! पर मेरा होना ही क्या इतना बड़ा गुनाह है, जयंत, कि एकदम लौटना ही पड़े ?

जयंत : नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं। मैंने सोचा शायद मेरी मौजूदगी आपको नागवार गुज़रे।

मीना : इतनी असभ्य तो मैं शायद कभी नहीं थी कि एक भले आदमी को—

जयंत : (बीच में ही) भला आदमी आप मुझे समझती हैं क्या ?

(शोभा का प्रवेश)

शोभा : अरे जयंत आ गये तुम ? आओ, तुम दोनों का परिचय करवा दूं। (हँसते हुए) ये हैं श्रीमती मीनादेवी और ये हैं—

मीना : मेरी याददाश्त इतनी कमज़ोर नहीं कि चार साल में ही सब कुछ भूल जाऊँ।

जयंत : शुक्र है खुदा का कि याद तो बनी हुई है !

शोभा : अच्छा मीना, प्याज़ खाना तो नहीं छोड़ा न ? ये जन-सेवी लोग कभी-कभी बड़े शाकाहारी क़िस्म के हो जाते हैं।

मीना : शोभा, किस झंझट में पड़ रही हो तुम ? सिर्फ़ चाय ही ले आओ। देखो मुझे फिर जाना भी है।

शोभा : झंझट क्या, बस पाँच मिनट में लाई। (प्रस्थान)

मीना : (बड़े ही स्निग्ध स्वर में) कैसे हो, जयंत ?

जयंत : अच्छा ही हूँ।

मीना : लगते तो नहीं रहे। देख रही हूँ, पहले से बहुत दुबले हो गए हो।

जयंत : दुबला ? (हँसता है) शायद तुम्हारी आँखों का फेर है। बल्कि यह बात तो मुझे तुमसे कहनी चाहिए थी। (कुछ रुककर) अच्छा, यह बताओ तुम्हारा काम कैसा चल

रहा है ? कितने परिवारों का उद्धार किया, कितनी औरतों को मुक्ति दिलवाई ?

मीना : देख रही हूँ, आज भी मुझ पर तुम्हारी नाराज़ी ज्यों-की-त्यों वनी हुई है ।

जयंत : नाराज़ी ? मैं तो कभी भी तुम पर नाराज़ नहीं था ।

मीना : रग्घू कैसा है ? कभी मुझे भी याद करता है या नहीं ?

जयंत : कई वार ! (सिगरेट का पैकेट जेब में टटोलते हुए) ऐतराज़ न हो तो सिगरेट पी लूँ ? (मीना स्वीकृति में सिर हिलाती है) अव तो सिगरेट के धुएँ से परेशान करने वाला शायद कोई न होगा, क्यों ?

मीना : (बुझे-से स्वर में) हाँ, कोई नहीं करता । कभी-कभी मन करता है कि कोई करे तव भी कोई नहीं करता । (जयंत सिगरेट को होठों से लगाकर जेव में लाइटर ढूँढ़ता है । मीना वीच मेज से दियासलाई उठाकर जयंत की सिगरेट जलाने उसके पास पहुँच जाती है । सींक की रोशनी में एक क्षण तक दोनों एक दूसरे को देखते हैं । शोभा का प्रवेश । दोनों को इस रूप में देखकर ठिठक जाती है ।)

शोभा : बुरे मौक़े पर घुस आई क्या ?

मीना : (सिगरेट जलाकर माचिस फेंकते हुए) नहीं-नहीं, आओ न! (शोभा चाय के बर्तन रखकर चाय बनाती है ।)

शोभा : देखो जयंत मीना ज़िद कर रही है कि कल शाम को इनके समारोह में जाऊँ । अव तुम्हीं बताओ, आजकल रियाज़ कहाँ कर पाती हूँ ?

मीना : तुम सिफ़ारिश कर दो न, जयंत ! सुना है तुम्हारे कहने से यह रेडियो में तो गा ही देती हैं ।

जयंत : गाती क्यों नहीं शोभा ? कौन वहाँ बड़ा इम्तिहान हो

रहा है, जो लंबे-चौड़े रियाज़ की ज़रूरत है।

शोभा : तुम कुछ देर ठहर जाओ, मीना, ये आते ही होंगे, तुम कहोगी तो कभी मना नहीं करेंगे।

जयंत : हाँ, तो यों कहो न कि अजित का डर लग रहा है। रियाज़ का बहाना क्यों बना रही हो ?

मीना : शोभा, ठहर तो नहीं पाऊँगी, तुम कहो तो फ़ोन कर दूँ दस-साढ़े दस बजे के बीच। पर गाना तुमको हर हालत में पड़ेगा, मैं अभी से कहे देती हूँ।

जयंत : तुम्हारे कहने से क्या होता है ? अजित इजाज़त देगा तो गाएँगी। (शोभा से) एक बार मैं तुम्हारे कॉलेज आकर देखना चाहता हूँ कि तुम लड़कियों को कैसे सम्हालती हो। बिना पूछे एक गाना गाने की हिम्मत तुममें है नहीं !

(जीजी का प्रवेश)

शोभा : अरे आप आ गईं, जीजी ? यह मीना।

(मीना नमस्कार करती है। जीजी भी करती हैं और बड़े ग़ौर से उसे देखती हैं। जयंत कुछ अटपटा-सा महसूस करता है।)

मीना : बैठिए।

जीजी : (बैठते हुए) इस समय तो बस से आने में प्राण ही निकल जाते हैं बस !

शोभा : आप बस में घुस कैसे लेती हैं इस समय, मुझे तो इसी में आश्चर्य होता है। आप शाम को क्यों नहीं जातीं सत्संग में।

जीजी : सत्संग में सवेरे न जाने से मुझे लगता है जैसे सारा दिन बिगड़ गया। (मीना की ओर से) आप कलकत्ता तो नहीं रहतीं शायद ?

मीना : जी अभी आई हूँ। (उठते हुए) अच्छा, अभी तो चलूँगी। (शोभा से) तो मैं दस-साढ़े दस बजे के बीच अजित को फ़ोन करूँगी ! यों थोड़ी भूमिका तुम बाँधकर रखना।

जयंत : तुम्हें जाना किधर है, मीना ?

मीना : यहाँ से तो चौरंगी ही जाऊँगी।

जयंत : चलो, तो मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ (शोभा से) और हाँ देखो, मेहता साहब एक नौकर भेजेंगे। बात करके देखना। अच्छा जीजी, इन्हें ज़रा छोड़ आऊँ।

(नमस्ते करके दोनों चलने लगते हैं। जीजी भीतर चली जाती हैं।)

जयंत : तुम्हारी क्लास कितने बजे है ?

शोभा : बारह से।

जयंत : हो सका तो मीना को छोड़कर एक चक्कर लगा लूँ। साढ़े ग्यारह पर मुझे इधर ही किसी से मिलने जाना है।

शोभा : फिर कब आ रही हो, मीना ? आज के आने को मैं आना नहीं मानूँगी, समझीं ?

मीना : (हँसते हुए) इतना आऊँगी कि तुम तंग आ जाओगी। बस मुझे ज़रा फ़ुरसत मिलने दो।

(जयंत और मीना जाते हैं। शोभा दरवाजा बन्द करके भीतर जाती है। कुछ देर रंगमंच खाली रहने के बाद फिर घंटी बजती है। शोभा आकर दरवाजा खोलती है। अजित का प्रवेश।)

शोभा : अरे, आप आ गए ?

(अजित बैग एक तरफ फेंककर बैठता है।)

शोभा : मीना आई थी।

अजित : (आश्चर्य से) मीना ? कितनी देर ठहरी ? हाँ, वह

आजकल कलकत्ते आई हुई है। तो आई यहाँ !

शोभा : तुम्हें याद कर रही थी। अभी उसे कहीं जाना था, सो ठहरी नहीं, बाद में आएगी।

अजित : अच्छा-ऽ-! मुझे याद कर रही थी ? वैसे क्या हाल हैं उसके ?

शोभा : उसी समय जयंत भी आ गए।

अजित : जयंत, इस समय ? (जरा-सी भृकुटि चढ़ जाती है जिस पर शोभा का भी ध्यान जाता है। पर तुरन्त अपने को सहज बनाता हुआ) कोई ऐसी-वैसी बात तो नहीं हुई न ?

शोभा : नहीं-नहीं, बिल्कुल नहीं। जयंत ही उसे छोड़ने गए हैं। मुझे तो लगा दोनों के मन में हल्का-सा अफ़सोस ही है शायद।

अजित : क्यों, कोई ऐसी बात हुई क्या ?

शोभा : नहीं, बात तो नहीं हुई, ठहरी ही तो ज़रा-सी देर। मुझे कल शाम को अपने समारोह में गाने का निमंत्रण देने के लिए आयी थी।

अजित : पर तुम तो उसके लिए पहले ही मना कर चुकी हो ? कल ही तो कोई आया था बुलाने।

शोभा : इसलिए तो वह खुद आई।

अजित : और तुमने हाँ भर दी होगी ?

शोभा : (भरपूर नजरों से देखते हुए) नहीं, इन्कार कर दिया।

अजित : क्या कहा ?

शोभा : कह दिया मेरे पास समय नहीं है।

अजित : हाँ-ऽ, और क्या ? आखिर कहाँ-कहाँ जाएँ और क्या-क्या करें ? कॉलेज, बच्ची और घर, यही काफ़ी है। फिर इन सब में जाने लगी तो कोई अन्त ही नहीं। मीना ने बुरा तो नहीं माना ?

शोभा : माना ही होगा तो क्या कर सकती हूँ ? सबको तो एक साथ खुश नहीं रखा जा सकता।

(फिर टेलीफ़ोन की घंटी बजती है, अजित उठाता है।)

अजित : हलो-ऽ—जी, जी हाँ।—जयंत बाबू ? इस समय तो वे यहाँ नहीं हैं, आये थे, चले गये। क्या ? साढ़े ग्यारह तक यहाँ फ़ोन करने को कहा था ?—नौकर ! जी हाँ, नौकर तो यहीं चाहिए। आ तो जाना चाहिए, मकान तो बिल्कुल सड़क पर है।—हाँ-हाँ, आता ही होगा। अच्छा, बहुत-बहुत धन्यवाद। (फ़ोन रखता है। शोभा से) जयंत क्या साढ़े ग्यारह तक यहाँ रहने वाला था ?

शोभा : पता नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं हुई। आए तो मीना बैठी हुई थी। हाँ, नौकर की बात ज़रूर कही थी कि मेहता साहब कोई नौकर भेजेंगे। और जाते समय यह भी कहा था कि हो सका तो मीना को छोड़कर वापस आएँगे। साढ़े ग्यारह बजे उन्हें इधर ही किसी से मिलना है।

अजित : हूँ ! तुम्हारी क्लास कब से है ?

शोभा : बारह से।

अजित : तो मेरे साथ तो तुम नहीं ही चलोगी।

शोभा : अभी से जाकर क्या करूँगी ? अभी तो मुझे अपना लैक्चर भी तैयार करना है।

(फिर फ़ोन की घंटी बजती है, अजित उठाता है।)

अजित : हलो-ऽ-ऽ—। ओह, कौन मीनाजी ? नमस्कार, नमस्कार! कहिए, कैसी हैं ? देखिए, आप आईं और हमसे मिले बिना ही चली गईं ?—हाँ—हाँ—क्या ? मेरी इजाज़त, कमाल करती हैं आप भी ! बात यह है, मीनाजी, कि शोभा खुद जाना पसंद नहीं करती है आजकल। इन सब चीज़ों के लिए बहुत समय चाहिए न, और इतना समय

वह निकाल नहीं पाती। यहाँ तो रोज कुछ न कुछ लगा ही रहता है। अब जिसके कार्यक्रम में भाग न लो वही नाराज़, इसीलिए—। डाँटकर भेज दूँ ? आपने क्यों नहीं डाँटा ? अरे मीनाजी, आजकल पति बेचारे को कौन गिनता है ? क्या कहा, मेरी ज़िम्मेदारी है ? बड़ी टेढ़ी ज़िम्मेदारी दे रही हैं आप ! ख़ैर, आपकी आज्ञा तो माननी पड़ेगी।—हाँ-हाँ, जाएगी। मैं ? ज़रूर साहब, मैं भी ज़रूर आऊँगा। आप इधर कब आएँगी ? हाँ, ज़रूर आइए, खाली होते ही। अच्छा नमस्ते—(फोन रखते हुए शोभा से) मीना का फ़ोन था। कह रही थी जैसे भी हो शोभा को गाना ही होगा। आप ज़ोर देकर भेजिए। (कुछ ठहरकर) सोचता हूँ, मीना के समारोह में तुम चली ही जाओ।

शोभा : (हल्के मुस्कराती है) क्यों, मीना के समारोह में ऐसी क्या बात है भला ?

अजित : कुछ तो है ही। आख़िर उससे हमारा बहुत पुराना संबंध है, फिर वह यह न समझ ले कि जयंत से संबंध टूटने के कारण हमने भी उससे संबंध तोड़ लिया। कल चली ही जाना।

शोभा : जाकर करूँगी क्या ? कोई गाना तैयार नहीं है, रियाज़ के लिए समय ही कहाँ मिल पाता है ?

अजित : अब ज्यादा इतराओ मत। कितने ही गाने तुम्हारे तैयार हैं।

(घंटी बजती है। अजित उठकर दरवाजा खोलता है। एक अपरिचित व्यक्ति का प्रवेश। वह एक चिट्ठी देता है।)

अजित : (पत्र पढ़ते हुए) तो तुम्हें मेहता साहब ने भेजा है ?

(वह व्यक्ति स्वीकृति-सूचक सिर हिलाता है।)
क्या नाम है तुम्हारा ?

व्यक्ति : नाम तो साहब ने चिट्ठी में लिख ही दिया है।

अजित : ओह ! (एक क्षण उसका मुँह देखकर फिर पत्र में देखता है) ओह ! बंसीलाल। अच्छा, तो देखो, यहाँ काम करना होगा तुम्हें। 'पहले ही सारी बातचीत हो जाए तो ज्यादा अच्छा रहेगा।

बंसी : हाँ साब ! ठीक ही रहेगा ?

शोभा : काम तो तुम सब करोगे न ?

बंसी : सबसे क्या मतलब है, साब आपका ?

शोभा : अरे, सब काम से मतलब यही है कि कपड़े धोना—

बंसी : (बीच ही में) कपड़े धोना ? तो क्या साब, आपके यहाँ धोबी नहीं आता ?

शोभा : धोबी तो आता है, पर रोज़मर्रा के कपड़े होते हैं उनको तो धोना पड़ेगा। और चौका-बरतन।

बंसी : चौका-बरतन के लिए तो, साब, आपको कहारिन रखनी पड़ेगी, वह हम नहीं करेंगे।

अजित : आप कपड़े नहीं धोएँगे, बरतन साफ़ नहीं करेंगे, तो आखिर आप करेंगे क्या ?

बंसी : हमारे लायक जो काम होगा वह सब करेंगे, साब !

अजित : आपकी लियाक़त ?

बंसी : यहाँ के मुख्य मंत्री के नौकरों की फ़ेरिस्त में हमारा नाम है, साब !

अजित : वाह-वाह, क्या खूब ! तब तो सचमुच ही बड़े लायक आदमी हो, यार।

शोभा : अच्छा यह बताओ खाना-वाना बनाना भी जानते हो या नहीं ?

बंसी : खाना ? आप भी क्या बात करते हैं, साब ! लोगबागों ने हवाई जहाज बना लिए और हम खाना नहीं बना सकते ? (अजित, शोभा, हंसने लगते हैं) पर बात यह है, साब, कि हम पहले जहाँ काम करते थे वहाँ हमें पका-पकाया खाना मिलता था। फिर यह काम, साब है भी औरतों का। आदमी रसोई में चला भले ही जाए, जँचता जरा भी नहीं है।

अजित : सीम्स टु बी एन इन्टरैस्टिंग पर्सन ?

शोभा : अच्छा, यह बताओ, तनख्वाह क्या लोगे ?

(जीजी का प्रवेश। वे चुपचाप आकर खड़ी हो जाती हैं।)

बंसी : हमारी लियाक़त देख लीजिए और आप ही तय कर दीजिए, साब ? हम क्या बोलेंगे भला ?

अजित : बात यह है कि यह भी पहले से ही तय हो जाए तो अच्छा है। यों तुम्हारी लियाक़त का थोड़ा सबूत तो मिल ही गया।

बंसी : तो फिर हम भी साफ़ बात ही करेंगे, साब ! बाज़ार आप किससे करवाएंगे ?

शोभा : बाजार ? क्या मतलब ?

बंसी : (जरा सकुचाते हुए) मतलब यही है कि अगर बाज़ार का सौदा-सुलुफ हम ही करेंगे तो ३०) लेंगे, वरना ४०) महीना।

अजित : तो सरकारी-भाजी में आप दस रुपया मारेंगे, क्यों ? हो दोस्त, बड़े ईमानदार !

बंसी : अरे साब ! दस रुपए के लिए बेईमानी करके कौन अपना लोक-परलोक बिगाड़े ! नौकर हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि हमारा कोई ईमान ही नहीं। ये तो

भाग्य से नौकरी करनी पड़ रही है, नहीं तो हम भी जात के अग्गरवाल बनिए हैं।

अजित : वाह, क्या बात है! तुम नौकर कैसे हो सकते हो भला? (एकदम खड़े होकर) आओ-आओ, कुरसी पर तशरीफ़ रखो।

बंसी : साब, मजाक तो करिए मत।

अजित : अच्छा जी, आप फ़िलहाल तो तशरीफ़ ले जा सकते हैं, ज़रूरत पड़ने पर हम बुलवा लेंगे। (बंसी नमस्ते करके चला जाता है) ये नौकरी करने आये हैं या लाटसाहबी?

जीजी : मैं तो कहती हूँ अब नौकरों का यही हाल होने वाला है। नौकरों के पीछे भागने के बजाय हाथ से काम करना सीखो!

अजित : मैं तो खुद यही कहता हूँ शोभा से। (शोभा उसे घूरती है)

जीजी : तुम यह कहते हो, अजित! शोभा तो फिर भी करती ही है बेचारी। तुम घर का कौन-सा काम करते हो?

अजित : मैं—मैं—बहुत काम करता हूँ। यह घर ठीक से चलता रहे इसलिए नौकरी करता हूँ।

जीजी : अब केवल नौकरी करने में घर नहीं चलता, समझे। वह जमाने गए, अजित, जब आदमी ने नौकरी कर ली और औरत ने घर का सारा काम कर लिया। अब जब औरत भी नौकरी करने लगी है तो मर्द को भी घर के काम में हाथ बँटाना पड़ेगा, समझे?

अजित : कौन कहता है औरत से कि नौकरी करे? छोड़ दे नौकरी। अब उसकी नौकरी के पीछे यह तो होगा नहीं कि पति, बच्चे, घर सब बेचारे मारे-मारे फिरें।

शोभा : क्यों, बीच में और कोई रास्ता ही नहीं है जैसे? विदेशों

में इतनी औरतें काम करती हैं, वहाँ क्या सब मारे-मारे ही फिरते हैं।

अजित : ओफ्फ़ोह ! विदेश की बात तुम अपने देश में तो किया मत करो।

शोभा : क्योंकि वह तुम्हें माफ़िक नहीं आती, इसलिए न ?

अजित : अब तुम घंटा भर बैठकर कानून बघारोगी (घड़ी देखते हुए) मैं तो चला। ग्यारह बज रहा है, आफ़िस भी तो पहुँचना है (जाते हुए) अच्छा टा—टा—। (प्रस्थान)

जीजी : शोभा, जितना भी होगा तुमको ही अपने को ढालना होगा। यह अजित तो न आज सुधरेगा, न कल। खुद तो खुद, अप्पी तक को उसने इतना विगाड़ रखा है कि बस।

(जीजी भीतर चली जाती है। शोभा यों ही अनमनी-सी अलमारी पर रखे अप्पी के खिलौने को हिलाने-डुलाने लगती है। जयंत का प्रवेश।)

जयंत : यह क्या, अप्पी स्कूल जाती है तो तुम उसके खिलौनों से खेलती हो ?

शोभा : ओह ! आ गये तुम ? (हँसते हुए) अरे, खिलौनों से अब क्या खेलूंगी !

जयंत : हाँ, अब तो खिलाती हो।

शोभा : यह बताओ, रास्ते में क्या-क्या बातें हुई मीना से ?

जयंत : कुछ नहीं, बस यों ही इधर-उधर की !

शोभा : मामला फिर पट सकता है क्या? कहो तो कोशिश करूँ?

जयंत : इस मामले को तो छोड़ो तुम्हारे लिए जरूर एक मामला लाया हूँ, यदि पट जाए तो। यों है ज़रा मुश्किल।

शोभा : मैं तो पटी-पटाई हूँ बाबा, अब और किसी से नहीं पटाना।

जयंत : मीना को छोड़कर कॉफ़ी हाउस में बैठ गया था। वहीं पर साहनी साहब से मुलाक़ात हो गई। वे यहाँ के महिला विद्यालय के मंत्री हैं, उन्हें एक प्रिंसिपल की ज़रूरत है, मुझसे बताने को कह रहे थे। मुझे एकाएक तुम्हारा ख़याल आ गया। कहो तो बात करूँ ?

शोभा : हाय राम ! मैं और प्रिंसिपल ? कालेज की लुटिया ही डूब जाएगी।

जयंत : बस तुम्हारी यही आदत मुझे अच्छी नहीं लगती। ज़रा अपने ऊपर भरोसा रखना सीखो। तुम तो पढ़ाने का काम लेने में भी इसी तरह घबरा रही थी।

शोभा : चलो, तब मैं ज़रा भी न घबराई थी। पर प्रिंसिपल का काम मुझसे नहीं हो सकेगा। सच पूछो तो आजकल तो पढ़ाना भी भारी पड़ने लगा है।

जयंत : सोच लो, बात तुम्हारे सामने रख दी। वैसे मैं यह भी सोचता हूँ कि ले लोगी तो कर भी डालोगी। ज़िम्मेदारी एक बार सिर पर आ जाती है तो आदमी रो-धोकर कर ही लेता है। (ज़रा ठहरकर) साहनी साहब मेरी बात टालेंगे नहीं, इसका मुझे विश्वास है। वरना कौन सिर्फ़ तीन साल के तजुर्बे पर प्रिंसिपल बनाता है ?

शोभा : (सोचते हुए) अच्छा, सोचकर बताऊँगी। इनसे भी ज़रा बात कर लूँ।

जयंत : किससे, अजित से ? तब तो हो चुका। वह तो पूछते ही मना कर देगा।

शोभा : क्यों ?

जयंत : बस देख लेना। तुमसे ज़्यादा उसे मैं जानता हूँ, इसीलिए।

शोभा : नहीं, ऐसी बात तो नहीं है। कालेज के काम के लिए उन्होंने कोशिश नहीं की थी ?

जयंत : हाँ—ऽ—, की थी। पर काम लेने के बाद वह ज्यादा खुश नहीं है इस स्थिति से !

शोभा : उसके और कारण हैं।

जयंत : बस तो इसके भी कारण निकल आएँगे, और ज्यादा ठोस कारण। (एकदम उठते हुए) देख लेना तुम ! अच्छा, मैं चला अब !

(शोभा दरवाजा बन्द करके अंदर जाती है। मंच पर धीरे-धीरे अन्धकार होता है। कुछ क्षण बाद जब फिर उजाला होता है तो कुछ वक्त बीत चुका है। अब संध्या के चार बजे हैं। रंगमंच खाली है। जीजी भीतर से प्रवेश करती हैं। अप्पी का बस्ता खुला पड़ा है, किताबें इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं।)

जीजी : लो, ये किताबें यहाँ फैला गई है। अपनी चीजें सम्हालकर रखना तो इस लड़की को कभी नहीं आएगा। अभी शोभा आएगी और बिगड़ेगी (सम्हालती है, इतने में घंटी बजती है) लो, आ गई लगती है। (अटैची वहीं पड़ी छोड़ देती हैं और जाकर दरवाजा खोलती हैं)

(शोभा का प्रवेश)

शोभा : यह क्या, फिर अप्पी ने अटैची यहीं छोड़ दी ?

जीजी : छोड़ दी ? सारी किताबें फैली पड़ी थीं। उधर आकर बोली, बुआजी, पेंटिंग हमने कर ली है, तैयार कर दीजिए, पार्क जाएँगे। यहाँ आकर देखा तो पन्ना-पन्ना फैला पड़ा है, पानी, रंग, ब्रुश। इसे कभी अकल नहीं आएगी।

शोभा : गई वह पार्क ?

जीजी : हाँ-ऽ-! बिट्टी, टोनी आए थे, उनके साथ चली गई।

शोभा : (हँसी आ जाती है) पाजी कहीं की ! दूध पिया या नहीं ?

जीजी : दूध पीने में वह कौन कम फ़ितूर मचाती है ? तुम्हारे लिए चाय ले आऊँ ?

शोभा : आप बैठिए जीजी, मैं खुद बनाकर लाती हूँ।

जीजी : (चिट्ठियाँ देते हुए) तुम ये देखो, मैं लाई। पानी तो रखकर ही आई थी, खौलने ही वाला होगा।

(जाने लगती है फिर एकाएक जैसे कुछ याद आता है)

तुम्हारा फ़ोन आया था, मीना का। कहा अजित जी ने इजाजत दे दी है। अब गाना तैयार कर लेना और ठीक समय पर पहुँच जाना।

(जीजी जाती हैं। शोभा चिट्ठी पढ़ने लगती है। थोड़ी देर में जीजी चाय ले कर आती हैं। शोभा चाय बनाती है।)

जीजी : मीना तो मुझे बड़ी भली लगी। ग़लत या अनुचित काम करने वाली तो लगी नहीं। जयंत का ही दोष होगा सारी बात में।

शोभा : ऐसी बातों में किसी एक को दोषी ठहराना ज़रा मुश्किल होता है, जीजी। फिर शुरू में तो जयंत का दोष था भी। अपनी स्टैनो से उसके संबंध—

जीजी : मुझे भी किसी ऐसी ही बात का शक था। यों मैंने तुमसे कभी इस बारे में बात नहीं की, पर डर मुझे कुछ ऐसा ही था तुम लोगों का दोस्त है, पर—

शोभा : नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है, जीजी। कभी-कभी ज़िंदगी में ऐसा हो जाता है। उसका भी कारण था। मीना कुछ ज्यादा ही आर्यसमाजी क़िस्म की थी। जयंत अँग्रेजी कंपनी में काम करता था—दोनों की ज़िंदगियों के ढर्रे कुछ अलग-अलग थे। इसी से शायद जयंत थोड़ा भटक गया। वरना इतने दिनों से यहाँ भी आ रहा है ऐसा

तो कुछ—

जीजी : बुरा न मानो तो एक बात कहूँ। आई थी तो सुना था कि जयंत अजित का जिगरी दोस्त है। पर इधर तो देखती हूँ अजित के पास तो वह कम ही बैठता है।

शोभा : (जरा-सा तेज होकर) जीजी, आप कहना क्या चाह रही हैं? इनके पास कोई बैठे क्या? इन्हें इधर दो साल से फ़ुर्सत भी मिलती है अपने ऑफ़िस से? सारे समय ऑफ़िस में रहते हैं, घर आते हैं तो ऑफ़िस खोलकर बैठ जाते हैं। बरसों से जयंत शाम को यहाँ आते हैं। पहले मीना भी आया करती थी, अब अकेले आते हैं। आप जितनी अनुभवी चाहे न होऊँ, पर थोड़ी परख आदमी की मुझे भी है।

जीजी : तुम नाराज़ मत हो, शोभा! मुझे जैसा लगा कह दिया। (कुछ ठहरकर) कभी-कभी आदमी अपना सुख खो बैठता है, तो चाहता है सारी दुनिया का सुख लूट ले। पर अपनी इस भावना को शायद वह भी नहीं जानता।

शोभा : दुनिया का क्या सुख लूटेंगे बेचारे! यों ऊपर से सभी ठाठ हैं, पर भीतर ही भीतर कितने दुखी और अकेले हैं। इसीलिए यहाँ आ जाते हैं। फिर मैं तो जब से आई हूँ तब से ही इन्होंने यह बात मेरे दिमाग़ में भर दी थी कि अजित-जयंत एक ही हैं।

जीजी : (कुछ रुककर) आजकल अजित को शायद इसका आना-जाना ज्यादा पसन्द नहीं। कुछ खिंचा-खिंचा ही रहता-है इससे!

शोभा : इनकी आपने भली चलाई। ये तो आजकल सारी दुनिया से ही खिंचे-खिंचे रहते हैं। असल में ये अपनी नौकरी से बहुत परेशान हैं, तनख्वाह के लालच में इस कंपनी

में काम ले तो लिया, पर लगा वहाँ इज्ज़त तो कुछ है ही नहीं। तो सब पर खिजलाते फिरते हैं। इन्हें मन लायक़ काम मिल जाय, आप देखिए, दो दिन में ठीक हो जाते हैं। वरना जयंत के बिना तो इनके गले में रोटी नहीं उतरती थी एक ज़माने में।

(अजित का प्रवेश। हाथ में टाफ़ी का डिब्बा है।)

शोभा : अरे, आप अभी से आ गए ?

अजित : छह बजे किसी से मिलने जाना है, सोचा घर होकर ही जाऊँ। (डिब्बा देते हुए) लो यह। अप्पी तो चली गई होगी ?

शोभा : फिर आप यह ले आए ? वह दो दिन में चरकर रख देगी।

अजित : जीजी, आप इस शोभा से मना कर दो कि यह अपना मास्टरनीपन मेरी बिटिया पर न चलाया करे।

जीजी : ठीक ही तो कहती है। तूने उसको ऐसा सिर चढ़ा रखा है कि कहना तो वह किसी का सुनती ही नहीं।

अजित : कौन कहता है, वह कहना नहीं सुनती ? आप लोग तो उसके पीछे हाथ धोकर पड़ी रहती हैं। लाओ, दो डिब्बा (अलमारी के ऊपर रखते हुए) देखिये, यहाँ रखता हूँ, और गिनकर रोज दो सवेरे और दो शाम को दिया करूँगा। अच्छा, गरम चाय पिलवाओ।

जीजी : (चाय के बर्तन समेटते हुए) अभी लाई।

शोभा : आप बैठिए, अब तो मुझे लाने दीजिए।

(बर्तन लेकर भीतर जाती हैं। जीजी भी पीछे-पीछे जाती हैं। अजित कोट और जूते उतारकर सोफ़े पर ही लेट-सा जाता है। एक सिगरेट निकालकर सुलगाता है कि फ़ोन की घंटी बजती है। जरा झुँझलाकर उठता है।)

अजित : कौन है—! (फ़ोन उठाता है) हलो-ऽ—शोभाजी ? (एक क्षण सोचकर) जी, मेहरबानी करके ग्राधा घंटा बाद फ़ोन कर लीजिए।

(फ़ोन रखता है कि शोभा का प्रवेश)

शोभा : किसका टेलीफ़ोन था ?

ग्रजित : (लापरवाही से) पता नहीं, तुम्हें पूछ रहा था कोई। कह दिया ग्राध घंटे बाद कर लेना।

शोभा : कमाल करते हैं ग्राप भी ! मैं यहीं तो थी। कौन था कम से कम नाम तो पूछ लेते।

अजित : क्यों भन्ना रही हो ? ग्राधा घंटे बाद कर लेगा। तुम तो चाय पिलाग्रो गरम-गरम।

शोभा : मैं इस तरह तुम्हारा फ़ोन रख दूँ तो।

ग्रजित : ग्राजकल तुम बात-बात में मेरी बराबरी करने में क्यों लगी हो ? कह तो दिया कि कर लेगा ग्राध घंटे बाद।

(शोभा चुपचाप चाय बनाती है।)

ग्रजित : ग्राज अप्पी के लिए नाच सीखने की व्यवस्था कर दी है। घर ग्राकर ही सिखा देंगे सप्ताह में दो दिन।

शोभा : क्या लेंगे ?

अजित : चालीस रुपए (कुछ ठहर कर) तुमने गाना तैयार कर लिया ? नहीं किया हो तो कर लो। मीना यह न कहे कि ग्राकर घास काट गई शोभा।

शोभा : रात को करूंगी। पर ग्राप कल ग्रपनी शाम खाली रख सकेंगे या नहीं ? ग्राप नहीं चलेंगे तो मैं भी नहीं गाऊँगी।

ग्रजित : एकदम खाली। ग्ररे, मैं पहली पंक्ति में बैठकर तुम्हारा गाना सुनूंगा, समझीं।

(शोभा को हँसी ग्रा जाती है।)

शोभा : (चाय पीते-पीते) एक बात पूछूं ?

अजित : एक क्यों, सैकड़ों बातें पूछो। एक घंटे तक जो मरज़ी आए पूछो !

शोभा : एक प्रस्ताव आया है मेरे पास।

अजित : प्रस्ताव ? कैसा प्रस्ताव, किसका प्रस्ताव ?

शोभा : यहाँ के महिला विद्यालय में प्रिंसिपल की जगह खाली है। तुम कहो तो अर्ज़ी दे दूँ।

अजित : पर प्रस्ताव आया कहाँ से ?

शोभा : बस, समझ लो, आ गया। तुम कहते हो, दे दूँ अर्ज़ी ?

अजित : (समझते हुए) प्रस्ताव अपने आप तो चलकर आया नहीं होगा। तुम चाहे न बताओ, पर मैं जानता हूँ कि जयंत के सिवा और कोई ला नहीं सकता।

शोभा : हाँ, जयंत ही लाए हैं, पर उससे क्या फ़र्क पड़ता है ?

अजित : (स्वर एकाएक ही बदल जाता है) मुझसे क्या पूछती हो ? जो तुम्हारी समझ में आए करो। न हो तो जयंत से सलाह ले लो।

शोभा : (गरम होकर) क्या मतलब ?

अजित : मतलब क्या, कुछ नहीं। वह प्रस्ताव लाया है, उसे मालूम होगा कि यह प्रस्ताव तुम्हारे लायक़ है या नहीं। या कि तुम काम के लायक़ हो या नहीं।

शोभा : मैं तुमसे पूछ रही हूँ, तुम क्या चाहते हो ?

अजित : आदमी को उतना ही बढ़ना चाहिए, जितनी उसकी औक़ात हो।

शोभा : यदि मैं सोचती हूँ कि सम्हाल लूंगी तब तो आपको कोई आपत्ति नहीं है न ?

अजित : (कुछ देर चुप रहकर) देखता हूँ, पिछले कुछ दिनों से तुम्हें अपने को लेकर काफ़ी भ्रम हो चला है। कॉलेज में पढ़ाना और कॉलेज चलाना दो अलग-अलग बातें हैं,

समझीं। फिर महिला विद्यालय अच्छा कॉलेज है। यह जयंत है कि झूठ-मूठ तुम्हें आसमान पर चढ़ाने की कोशिश करता रहता है।

शोभा : और तुम हो कि मुझे रात-दिन धरती पर घसीटने की कोशिश करते रहते हो! मैं पूछती हूँ आखिर क्यों?

अजित : (उत्तेजित होकर) इसलिए कि मैं तुमसे ज्यादा तुमको, तुम्हारी योग्यता और तुम्हारी सीमाओं को समझता हूँ। एक घर तो तुम ठीक तरह से चला नहीं सकतीं, कॉलेज चला लोगी!

शोभा : तो तुम चाहते हो मैं अर्ज़ी नहीं दूँ?

अजित : चाहने की बात क्या है, मैं ऐसा सोचता हूँ।

शोभा : मुझे तो पहले से ही मालूम था कि तुम मना ही करोगे।

अजित : पहले ही मालूम था तो फिर पूछा ही क्यों?

शोभा : इसलिए कि एक बार तुम्हारे ही मुँह से सुनना चाहती थी। मैं कुछ कहती नहीं, इसका यह मतलब नहीं कि मैं तुम्हें समझती नहीं। तुम्हारी हर बात, हर मनोभाव खूब अच्छी तरह समझती हूँ। मैं अर्जी दूँगी, और यह काम मुझे मिल गया तो दिखा भी दूँगी कि तुम जितना अयोग्य मुझे समझते हो, उतनी मैं हूँ नहीं।

अजित : (आवाज को संयत करके) तुमने बेकार ही यह बात चलाई, शोभा! जब तुम अपने बारे में, अपनी योग्यता के बारे में, इतनी आश्वस्त हो तब बेकार ही मुझे बीच में घसीटा। ऐसी हालत में तो न मुझे पूछने की ज़रूरत थी, न मेरी राय लेने की।

(शोभा चुपचाप चाय के बर्तन उठाकर अन्दर चली जाती है। अजित एक नई सिगरेट सुलगाकर सोफ़े पर लेट-सा जाता है। सिगरेट का धुआँ उसके चारों ओर छाने

लगता है। धीरे-धीरे एकाएक अंधकार हो जाता है।)

(दूसरा दृश्य)

(दूसरे दिन संध्या के पांच बजे। ड्राइंगरूम खाली पड़ा है। जिस अलमारी पर टॉफ़ी का डिब्बा रखा था, उसके नीचे मेज रखी है, उसके ऊपर एक छोटी कुर्सी; डिब्बा ग़ायब है। भीतर से शोभा तैयार होकर आती है; आते ही नजर मेज-कुर्सी पर पड़ती है। एक क्षण देखती रहती है। फिर हँसने लगती है।)

शोभा : जीजी—जीजी—

(जीजी का प्रवेश)

शोभा : देखिए जीजी, हो गया डिब्बा ग़ायब ? (जीजी को हंसी आ जाती है) बड़े कह रहे थे कि अपना मास्टरनीपन मत लगाया करो। देख लिया आपने ?

जीजी : लगता है आज इधर के दरवाज़े से ही निकल गई है ! शैतान कहीं की !

(शोभा उठकर मेज-कुर्सी ठीक करती है। हंसती रहती है। फिर फ़ोन करती है।)

शोभा : हलो-ऽ—जी, मैं मिसेज़ अजित बोल रही हूँ।—नहीं आए ? (गुस्से से फ़ोन रख देती है) देखिए जीजी, अभी तक इनका पता नहीं है।

जीजी : शायद आता ही हो।

शोभा : खाक आते होंगे ! ऑफिस में हैं ही नहीं। आधा घंटे से तीन बार तो फ़ोन कर लिया। वे तो बारह बजे से ही गए हुए हैं बाहर।

जीजी : साढ़े पाँच बजे तक राह देख लो, आ जाए तो ठीक है,

वरना तुम अकेली चली जाना।

शोभा : सो तो जाना ही होगा। पर ये आए क्यों नहीं ? मैंने तो पहले ही मीना को मना कर दिया था। मैं क्या जानती नहीं कि इन्हें यह सब पसंद नहीं है। तब क्यों कहा मीना से कि आ जाएगी ?

जीजी : शोभा, इतना नाराज़ नहीं होते। तुम तो जानती ही हो आजकल उसे ऑफ़िस के काम के मारे साँस लेने तक की फ़ुर्सत नहीं है। ज़रूर कहीं फँस गया होगा।

शोभा : कहीं नहीं फँसे ! मुझसे नाराज़ हैं। यह नाराज़ी दिखाने का ढंग है। जहाँ अपनी इच्छा से कोई काम किया कि इनका मुँह फूला।

जीजी : (समझाते हुए) शोभा, इस तरह का आरोप लगाते हुए एक बार तो ज़रा सोचो। आखिर आज तुम जो कुछ हो वह अजित की बनाई ही तो हो। तुम्हारे मन में कोई 'अपनी इच्छा' जागे इस लायक़ भी तो तुम्हें अजित ने ही बनाया है, यह मत भूलो।

(फ़ोन की घंटी बजती है। शोभा एकदम दौड़कर फ़ोन लेती है।)

शोभा : हलो-ऽ-।—ओह, तुम हो मीना !—मैं क्या करूँ, मैं बैठी इनकी राह देख रही हूँ। इनका कहीं पता ही नहीं। ऐं—अच्छा, तो मैं अकेली ही आती हूँ। (जीजी से) मैं जा रही हूँ, जीजी। ये भी आ जाएँ तो आप इन्हें वहीं भेज दीजिए।

जीजी : हाँ-हाँ, ज़रूर भेज दूँगी !

शोभा : अप्पी लौटकर आए तो उससे डिब्बा ले लीजिए और खाना खिलाकर सुला दीजिए।

जीजी : तुम जाओ, मैं सब कर दूँगी।

(शोभा का प्रस्थान। जीजी भीतर जाती हैं। रंगमंच पर धीरे-धीरे अँधेरा होता है। फिर घंटी बजाती है। जीजी भीतर से आकर बत्ती जलाती हैं, दरवाज़ा खोलती हैं। अजित का प्रवेश।)

जीजी : अब आ रहे हो तुम! कुछ होश भी रहता है तुम्हें, अजित?

(अजित थका हुआ-सा सोफ़े पर बैठ जाता है।)

अजित : क्या करूँ, जीजी, आज तो ऐसा फँस गया कि बस! शोभा क्या अप्पी को सुला रही है?

(आश्चर्य से) अजित! तुम्हें क्या कुछ भी याद नहीं रहता? शोभा का आज गाने का कार्यक्रम था कि नहीं, तुम तो आए नहीं, कितना नाराज़ होकर गई है वह!

अजित : ओ गॉड! मैं तो बिल्कुल ही भूल गया। (एकदम घड़ी की ओर देखकर) अब तो कार्यक्रम खत्म होने वाला होगा। त्-त्...

जीजी : तुम आखिर गए किधर थे? चार बार तो उसने फ़ोन किया होगा!

अजित : (अजित सिर पकड़ लेता है) क्या बताऊँ, जीजी? मैं तो बिल्कुल भूल ही गया था। जैसे ही दफ़्तर पहुँचा जनरल मैनेजर का फ़ोन मिला कि जर्मन कंपनी के डाइरेक्टर से मिल लूँ। लंच उन्हीं के साथ लूँ और सारी बातचीत भी कर लूँ। उन लोगों के साथ मिलकर हमारी कंपनी एक नई मिल बिठाना चाह रही है, उसी सिलसिले में। बिना किसी तैयारी के बातचीत करना—मैं तो एकदम ही घबरा गया। काग़ज़-कूगज बटोरने में ऐसा लगा कि बिल्कुल भूल ही गया। लंच के बाद से उन लोगों के साथ ही था। बस वहीं से आ

रहा हूँ।

जीजी : कम से कम तुम फ़ोन ही कर देते और यह सब उसे समझा देते तो इतनी नाराज़ तो नहीं होती। न इतनी ऊटपटाँग बातें ही सोचती। तुम जानते ही हो कि आजकल—

अजित : (जरा चौंककर) आजकल—आजकल क्या ?

जीजी : (स्नेहपूर्ण स्वर में) तुम्हें थोड़ी समझदारी से काम लेना चाहिए, अजित ! थोड़ा शोभा की भावनाओं का खयाल रखना चाहिए, वरना फिर उसके दिमाग़ में—

अजित : क्या बात है, जीजी, क्या कहा शोभा ने ?

जीजी : ऐसी कोई ख़ास बात नहीं, पर एक बात उसके दिमाग़ में घर करती जा रही है, कि तुम्हें उसका घूमना-फिरना, पढ़ाना, गाना यह सब पसंद नहीं है। और तुम इस सब में किसी न किसी बहाने से रुकावट डालते हो।

अजित : (एकदम हल्का होकर हँस पड़ता है) अरे जीजी, शोभा तो पगली है। फिर हर बात में मुझसे लड़ना तो उसने अपना स्वभाव बना लिया है। मैं उससे यह भी कहूँ कि आज हवा बहुत ठंडी है तो वह छूटते ही कहेगी 'मैं जानती हूँ कि आपको मेरा काम करना पसंद नहीं है।' यह सब मैंने ही तो उसे सिखाया है, वरना बरेली की दसवीं पास लड़की—साड़ी पहनना तो आता नहीं था उसे। मुझे पसंद न होता तो मैं पढ़ाता-लिखाता ही क्यों ? शोभा को मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ, खूब अच्छी तरह। अरे, वह है ही 'अजित मेड'। अपनी बनाई चीज़ को भी नहीं पहचानूंगा भला।

जीजी : बस यहीं तुम भूल करते हो, अजित। कभी वह ज़रूर बरेली की दसवीं पास लड़की थी, जिसे साड़ी बाँधना

नहीं आता था। पर आज तो नहीं है। आज उसका अपना अलग व्यक्तित्व बन चुका है। उसमें प्रतिभा है, और इस बात को अब वह भी खूब अच्छी तरह जानती है!

अजित : तो उससे क्या हुआ ?

जीजी : हुआ खाक ! तुम्हारा उसके प्रति आज भी वही व्यवहार है जो दस साल पहले था —पर अब वह चलेगा नहीं।

अजित : कैसी बातें करती हैं, जीजी, आप भी ! व्यवहार तो मेरा वही रहेगा, चाहे वह मास्टरनी हो जाए, चाहे लाट साहब ! आप क्या चाहती हैं मैं उसकी सवेरे-शाम आरती उतारा करूँ ?

जीजी : अब जब तुम कुछ समझना ही नहीं चाहते तो बात करना ही बेकार है।

अजित : क्या समझाना चाहती हैं आप, समझाइए न ?

जीजी : देखो अजित, पढ़ी-लिखी मैं चाहे बहुत नहीं हूँ, पर उम्र में तुमसे दस साल बड़ी हूँ। दुनिया देखी है, और आदमी परखने की नज़र भी मेरी तुमसे कहीं ज्यादा है।

अजित : (खीझकर) आप कुछ बताएँगी भी या बस उपदेश ही झाड़े जाएँगी। मैं कब कहता हूँ कि आप बड़ी नहीं हैं !

जीजी : (कुछ सोचते हुए) बता सकते हो तुम्हारी और पिताजी की हमेशा लड़ाई क्यों रही ?

अजित : बहुत साफ़ बात है। वे चाहते थे मैं उनकी दुकान का काम सम्हालूँ, क्योंकि नौकरी करना उन्हें ऐसा लगता था जैसे कुलीगीरी करना हो। अब आप ही बताइए, एम० ए० एल०-एल० बी० करके मैं दवाइयों की दुकान सम्हालता ? ऐसा ही था तो पढ़ाते नहीं, शुरू से दुकान ही करवाते।

जीजी : यही बात मैं कभी उन्हें भी समझाया करती थी। और वे कहते थे, 'कृष्णा, आखिर मैंने ही तो उसे पढ़ाया-लिखाया है, और अब वह मेरी ही बात नहीं मानता।'

अजित : (बात बीच में ही काटकर) कहाँ की बात आप कहाँ खींच लाई, जीजी ? वह दो पीढ़ियों का झगड़ा था जो हमेशा रहा है और हमेशा रहेगा। यहाँ तो ऐसी कोई बात नहीं है।

जीजी : (सोचते हुए) है अजित, है। यह शायद बनाने वाले और बनने वाले का संघर्ष है, जो दो पीढ़ियों के बीच भी हो सकता है और एक ही पीढ़ी के दो व्यक्तियों के बीच भी।

अजित : जीजी, देख रहा हूँ, आप तो बड़ी ऊँची-ऊँची बातें करने लगी हैं। पर मेरे और शोभा के बीच ऐसी कोई बात नहीं है। मैं उसे अच्छी तरह समझता हूँ।

जीजी : मैं तो खुद यही चाहती हूँ कि समझ सको, समझो। (कुछ ठहरकर) जयंत के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है।

अजित : (चौंककर) क्यों, क्या बात हुई ?

जीजी : बात कुछ नहीं, कल मीना को देखकर लगा कि उनके अलगाव में दोष जयंत का ही रहा होगा। केवल सुन-सुनकर ही मैंने तो मीना के बारे में बड़ी गलत धारणा बना ली थी। कल उसे कुल दस मिनट के लिए देखा पर समझ लिया कि—

अजित : (बीच ही में) हाँ, गलती तो जयंत की ही थी। पर जब वह स्टैनो शादी करके चली गई तो मीना को भी थोड़ा नरम पड़ जाना चाहिए था। लेकिन उसने इसे आत्म-सम्मान का प्रश्न बना लिया।

जीजी : मैं मीना को दोष नहीं देती। कोई भी आत्म-सम्मान वाली औरत बिना बहुत बड़ी मजबूरी के ऐसी हालत में

रहना पसंद नहीं करेगी।

अजित : देख रहा हूँ, जीजी, आप तो काफ़ी नए जमाने की होती जा रही हैं।

जीजी : ले, इसमें नए जमाने की क्या बात हुई ? पति-पत्नी के बीच में जब भी कोई तीसरा आदमी आता है, यही नतीजा होता है।

अजित : सब जगह ऐसा कहाँ होता है ? आदमी चाहे न सहे, औरत तो रो धोकर सह ही लेती है।

जीजी : कहा न, हो सकता है किसी बहुत बड़ी मजबूरी में वह घर छोड़कर न जाए, पर एक छत के नीचे रहना ही तो साथ रहना नहीं होता। मन तो उनके अलग हो ही जाते हैं। बीच वाला व्यक्ति चाहे हट जाए, पर संबंधों में जो दरार पड़ जाती है वह कभी नहीं भरती।

अजित : बाद में तो जयंत को भी कुछ दिनों तक अफ़सोस होता रहा, पर उस समय तो आपस में कड़वाहट इतनी बढ़ गई थी कि अलग हो जाना ही अच्छा हुआ।

जीजी : (उठते हुए) भगवान अब भी उसे सद्बुद्धि दें। अपने अनुभवों से कुछ तो सीख ले। (प्रसंग बदलकर) तुम खाना अभी खाओगे या शोभा के साथ ही।

अजित : शोभा को आ ही जाने दीजिए, साथ ही खा लेंगे।

जीजी : कम से कम आज तो उसके साथ ही खाओ। इसी बहाने उसका गुस्सा कुछ तो कम होगा।

अजित : अरे जीजी, आने दीजिए आप उसे। पाँच मिनट में उसका गुस्सा दूर करता हूँ। आज उस जर्मन को ऐसे रोब में कर लिया था कि बस। मैं तो इस चक्कर में हूँ कि किसी तरह वे लोग अपने यहाँ कोई काम दे दें। इस खिचखिच से छुट्टी मिले। आप देखिए तो अब ठाठ

अपने अजित के।

जीजी : (हल्के से हँसकर) अच्छा तो मैं चलकर खा लूँ।

(जीजी उठकर भीतर जाती हैं। अजित एक सिगरेट निकालकर सुलगाता है, एक कश खींचकर गद्दी को तकिए की तरह रखकर पैर फैलाकर सोफे पर ही सोता है। किसी चीज़ के चुभने से उछलकर बैठ जाता है। पीछे से अप्पी की प्लास्टिक की गुड़िया निकल आती है।)

अजित : (गुड़िया को हाथ में लेकर) अरे वाह, तो आप हैं! क्या खूब ! तुम्हारी अप्पी ममी आज तुमको यहीं छोड़-कर सो गई, क्यों ? चलो, तुम्हें भी तुम्हारी ममी के पास लिटा दें।

(अजित भीतर जाता है। दो मिनट बाद ही जयंत और शोभा का प्रवेश। जयंत के कंधे पर कैमरा लटका हुआ है।)

जयंत : आज तो तुमने कमाल कर दिया, शोभा ! लगता है मिजाज़ बिगड़ा रहे तो ज्यादा अच्छा गाया जाता है। (कैमरा उतारकर ठीक करते हुए) अच्छा चलो, इसी, बात पर तुम्हारी एक तस्वीर हो जाए। वहाँ वह तब-लची तुम्हें काट देता था। (आवाज़ देता हुआ) अरे अजित ! बाहर निकलो यार। देखो अपनी बीवी को बधाई तो दो।

शोभा : देखती हूँ जाकर, पता नहीं, ये आए भी या नहीं।

जयंत : हँ-हँ-हँ—ठहरो, ठहरो ज़रा। (ठहर जाती है) हाँ, बस ऐसे ही। (अजित का प्रवेश। फ़ोटो उतारते देख कर वहीं रुक जाता है) एक—दो—तीन—धन्यवाद—(अजित से) यार, तुम अफ़सरी करते हो या क्लर्की ? जब देखो तब ऑफ़िस में !

अजित : (उसका मिज़ाज बिगड़ जाता है) हाँ, अब तो मुझे भी लगता है कि क्लर्की करता हूं।

जयंत : जो भी हो, तुम्हारी वजह से शोभा का जो मिजाज़ बिगड़ा तो गाना ऐसा जमा कि जवाब नहीं। ऐसे कार्य-क्रम में तुम मिजाज़ बिगाड़कर ही भेजा करो। कल अखबारों में तारीफ़ पढ़ना और बैठकर कुढ़ना।

अजित : हाँ—ऽ—अब तो पछताना और कुढ़ना ही बाक़ी रह गया है अपनी ज़िन्दगी में।

(हाथ की सिगरेट को बिना बुझाए ही राखदानी में डालने के बजाय झटककर एक ओर फेंक देता है।)

जयंत : यार, वह सिगरेट बुझी नहीं है, जल रही है, कहीं आग-वाग न लग जाए। (अजित पैर बढ़ाकर सिगरेट पर रगड़ देता है; जयंत उठता है) अच्छा, तो मैं चला। तेरी बीवी को घर तक छोड़ने की जिम्मेवारी मीना ने मुझे दी थी, सम्हाल लेना।

(हाथ हिलाता हुआ चला जाता है। शोभा पीछे जाकर दरवाज़ा बंद कर देती है। घूमते ही अजित से सामना होता है पर उधर ध्यान दिये बिना ही भीतर जाने लगती है।)

अजित : (व्यंग से) तो बहुत शानदार रहा तुम्हारा गाना!

शोभा : (बिना मुड़े जरा-सा ठहरकर) आपको क्या मतलब? जैसा हुआ, हो गया।

अजित : बड़ा गुस्सा आ रहा है?

शोभा : गुस्सा? (एकदम पलटकर) गुस्सा नहीं आएगा? क्या कहा था आपने?

अजित : घर में घुसीं तब तो गुस्से का नाम-निशान तक नहीं था चेहरे पर। मुझे देखते ही शायद गुस्सा ओढ़ना पड़ रहा

है, क्यों ? (शोभा बड़े गुस्से से उसे देखती है, मानो समझ नहीं पा रही हो कि क्या कहे। अजित उधर ध्यान दिए बिना उसी तरह कहता रहता है) वहाँ की प्रशंसा और वाहवाही में गुस्सा कहाँ टिकता वेचारा—

शोभा : (चीखते हुए) अजित ! जब पूरी तरह होश में आ जाओ तब बात करना, समझे !

(तेज़ी से बाहर चली जाती है।)

अजित : सच बात इतनी ही तल्ख होती है। सहना बड़ा मुश्किल होता है।

(सिगरेट पीता रहता है। धीरे-धीरे अंधकार होता है। पर्दा गिरता है।)

द्वितीय-अंक

(पहला दृश्य)

(कुछ दिनों बाद अजित का वही ड्राइंग-रूम। समय संध्या के छह बजे। शोभा कॉलेज के क्लर्क के साथ बैठी हुई बातें कर रही है। वह काग़ज़ लिए हुए कुछ लिख रहा है। शोभा के सामने एक डायरी खुली हुई रखी है।)

शोभा : तो आपने सब लिख लिया, मिस्टर चौधरी ?

क्लर्क : आप कहें तो एक बार फिर से पढ़कर सुना दूं ?

शोभा : नहीं-नहीं, उसकी क्या जरूरत है ? तो आप आॅर्डर इण्डिया वुड क्राफ़्ट वाले को ही दीजिए। उससे कहिए किसी भी दिन सवेरे दस और ग्यारह के बीच आकर मुझसे डिज़ाइन पास करवा ले।

(अजित का प्रवेश। दोनों को देखता है, ज़रा-से तेवर चढ़ जाते हैं। बिना कुछ बोले भीतर जाने लगता है।)

क्लर्क : छुट्टियों में पंखों पर भी रंग करवाना होगा। आठ पंखे नए खरीदने होंगे और एक पानी का कूलर और—

शोभा : इस मीटिंग में इन चीजों की मंजूरी लेनी ही है। और भी कुछ हो आप बता दीजिए। मीटिंग के पहले

मुझे पूरी सूची एक साथ तैयार करके दीजिए।

क्लर्क : (उठते हुए) अच्छा, तो मैं इस समय तो चलूँ।
(नमस्कार करके जाता है। शोभा मेज़ पर फैले काग़ज़ आदि समेटती है। अजित का भीतर से प्रवेश।)

अजित : शोभा, कॉलेज के लोगों को तुम कॉलेज में ही बुलाया करो न! घर में बैठने को यही तो एक ठीक-ठीक कमरा है। सोने का कमरा तो तुम जानती हो, इतना गरम हो जाता है कि बैठना मुश्किल होता है। इस कमरे में आजकल जब देखो तुम अपना ऑफ़िस खोले बैठी रहती हो, आखिर—

शोभा : मैं खुद नहीं चाहती कि कॉलेज के लोगों को यहाँ बुलाऊँ। पर साल खत्म हो रहा है, काम इतना रहता है, और इतने आने-जाने वाले रहते हैं कि शांति से बात नहीं हो सकती। इसलिए ज़रा-सी देर के लिए घर बुला लिया था।

अजित : अभी साल खत्म हो रहा है, फिर नतीजा निकलेगा तो लोग घर चक्कर लगाएँगे, फिर दाखिले के लिए, फिर फ़ीस माफ़ कराने के लिए—फिर कुछ और निकल आएगा। मुझे तो आजकल लगता है मैं घर में नहीं, मानो तुम्हारे ऑफ़िस में रहने लगा हूँ। (अजित बीच की मेज़ से अपनी डायरी उठाकर खोलता है) कितनी बार मैंने अप्पी से कहा है कि यह मेरी डायरी में ये सब कीड़े-मकोड़े न बनाया करे। कम से कम तुम उसे तो कुछ सिखा ही सकती हो। वह बेचारी तो आजकल भगवान भरोसे ही पल रही है। दुनिया-भर के बच्चों को पढ़ाया और—

शोभा : (बीच में ही बात काटकर) ताने मारने में आपको

कोई विशेष आनन्द आता हो तो ठीक है, लेकिन इतना जान लीजिए कि मेरी सहनशक्ति की भी एक सीमा है।

अजित : मैं और ताने मेरी इतनी जुर्रत कहाँ कि महिला विद्यालय की प्रिंसिपल साहब को ताने मारूँ? मैंने तो सीधी-सी बात कही थी।

शोभा : जैसी सीधी बातें आप पिछले कुछ महीनों से कर रहे हैं, क्या मैं समझती नहीं? मैं जानती हूँ कि मेरा प्रिंसि-पल का काम लेना आपको भाया नहीं। पर एक बार तो आपने मुझे समझाने की कोशिश की होती कि क्यों आप इस काम के खिलाफ़ हैं।

अजित : तुम्हें भी अपना कोई ज़रूरी काम करना होगा, मुझे भी कुछ करना है। बेहतर होगा हम इन सब फ़ालतू बातों में अपना समय जाया न करें।

शोभा : यदि सचमुच ही ये सारी बातें फ़ालतू होतीं तो न तो आप यों अपना संतुलन खो बैठते, न मैं ही इन्हें इतना तूल देती। आप मुझे बताते क्यों नहीं कि मैंने एक अच्छी नौकरी लेकर आखिर ऐसा क्या गुनाह कर दिया है? मान लीजिए, आज आपको एकाएक ऐसी जगह मिल जाए, जिस तक पहुँचने के लिए वैसे आपको शायद दस साल लगें, तो आप नहीं ले लेंगे? लेकर प्रसन्न नहीं होंगे? अपने को उसके लायक सिद्ध करने के लिए जी-जान नहीं जुटा देंगे?

अजित : (सीधी नज़रों से शोभा को देखता है, फिर बड़े ही संयत और आवेशहीन स्वर में) ज़रूर जुटा दूँगा! पर शोभा, मेरी बात थोड़ी-सी भिन्न है। एक तो मैं अपने काम से यों ही बेहद असंतुष्ट हूँ, इसलिए मुझे कोई

मौक़ा मिलेगा तो जरूर ले लूंगा। फिर भी यदि उस काम के लिए मुझे अपने घर, अपनी बीवी और बच्ची की क़ीमत चुकानी पड़े तो शायद दस बार सोचूँगा। क्योंकि मैं किसी अच्छी नौकरी की कामना केवल इसीलिए करता हूँ कि तुम लोगों को और अधिक आराम से रख सकूँ।

शोभा : तो तुम क्या समझते हो कि मैं तुम लोगों की क़ीमत पर यह काम कर रही हूँ ?

अजित : मुझे तो ऐसा ही लगता है।

शोभा : कारण ?

अजित : कारण भी मुझे ही बताना होगा ? तो सुनो। (स्वर में हल्का-सा आवेश आ जाता है) मैं चाहता हूँ मेरा घर घर हो—कोई ऑफ़िस या होटल नहीं। थका-माँदा मैं ऑफ़िस से लौटकर आऊँ तो मेरी भी इच्छा होगी कि मेरी पत्नी—(बात बीच में ही छोड़ देता है) पर यहाँ तो जब भी आओ यही सुनने को मिलता है, अभी वे मीटिंग में गई हैं, या कि इतने जरूरी काम में हैं कि उन्हें बात तक करने की फ़ुर्सत नहीं है।

शोभा : (गुस्सा बढ़ता जाता है, फिर भी अपने को भरसक संयत करके) और कुछ ?

अजित : और ? और मैं चाहता हूँ कि मेरी बच्ची की परवरिश अच्छी तरह हो। देख रहा हूँ धीरे-धीरे उसका तो सारा ही भार जीजी पर चला गया। जीजी उसे अच्छी तरह देखती हैं, पर क्या सोचती होंगी वे भी मन में ? उसके प्रति क्या कोई भी फ़र्ज़ नहीं है तुम्हारा ? एक बच्ची है, पर तुम्हें उसके लिए भी फ़ुर्सत नहीं। बड़े-बड़े काम हैं तुम्हारे सामने करने को, तुम नहीं करोगी तो देश रसातल को

नहीं चला जाएगा ?

शोभा : (बहुत ही शांत स्वर में) एक बात पूछूं ? आपको घर का इतना खयाल है, जीजी का खयाल है, अपना और अप्पी का खयाल है, पर कभी मेरा भी खयाल किया है आपने ? कभी मेरी भावनाओं को भी समझने की कोशिश की है ? मेरी अपनी भी कुछ आकांक्षाएँ हैं, अपने जीवन का कोई स्वप्न है। इस घर की चहारदीवारी के परे भी मेरा अपना कोई अस्तित्व है, व्यक्तित्व है, और मैं चाहती हूँ कि—(गुस्से में होंठ काट लेती है)

अजित : सच बात ऐसी ही तल्ख होती है कि आदमी तिलमिला जाता है।

शोभा : फिर यह सच बात है भी नहीं। मैं खुद जानती हूँ कि जब घर बसाया है, बच्ची को जन्म दिया है तो मेरा पहला कर्त्तव्य उनके प्रति ही है। पर अपने इस कर्त्तव्य को भी भरसक पूरा ही करती हूँ। आजकल दो-दो नौकर हैं—सभी काम बड़े व्यवस्थित ढंग से चल रहे हैं। अप्पी को मैं खुद दो घंटे रोज लेकर बैठती हूँ, उसका पढ़ना, उसका खाना, उसका नाच सभी तो देखती हूँ। और जहाँ तक आपका प्रश्न है—

अजित : (बीच में ही बात काटकर) मेरा ? मेरी बात तो तुम छोड़ ही दो। ऑफ़िस से आया तो देखा यहाँ तुम्हारा ऑफ़िस खुला हुआ है। भीतर जाकर देखा एक नौकर अप्पी को लेकर पार्क गया है तो दूसरा सामान खरीदने। जीजी नहा रही हैं। एक प्याले चाय तक की कोई व्यवस्था नहीं। बैठकर नौकर का इन्तज़ार करो—मानो यह घर नहीं होटल है।

(हाथ की सिगरेट मसल कर राखदानी में डाल देता है और कोट कंधे पर डालकर एकदम बाहर निकलने लगता है ।)

शोभा : बाहर कहाँ चले ? मैं चाय ला रही हूँ ।

अजित : वाहर ही कहीं पी लूँगा ! (चला जाता है)

(शोभा कुछ देर तक बड़े व्यथित भाव से देखती रहती है, फिर हथेली में सिर टिकाकर आँखें मूँद लेती है ।)

(जयंत का प्रवेश)

जयंत : शोभा !

(शोभा चौंककर ऊपर देखती है। उसकी आँखों में आँसू हैं।)

जयंत : यह क्या, तुम रो रही हो ?

शोभा : नहीं, यों ही ज़रा !

जयंत : वात क्या है ? अजित क्या ऑफ़िस से आ गया ?

शोभा : आए थे, फिर चले गए !

जयंत : कहाँ ?—क्या किसी काम से गया है ?

शोभा : नहीं, नाराज़ होकर !

जयंत : क्यों क्या वात हुई ?

शोभा : जयंत, तुम साहनी साहव से कह दो कि वे जुलाई से किसी और प्रिंसिपल का इन्तज़ाम कर लें। मेरे लिए यह काम करना संभव नहीं होगा ।

जयंत : क्यों पागलों-जैसी वातें कर रही हो ? वताती क्यों नहीं क्या वात हुई है ?

शोभा : (कुछ ठहरकर) तुम तो जानते ही हो, ये शुरू से ही मेरे इस काम के खिलाफ़ थे । मैंने एक तरह से इनकी इच्छा के विरुद्ध ही इसे लिया था । सोचती थी शायद इन्हें मेरी योग्यता पर विश्वास नहीं है, इसीलिए ये विरोध कर रहे

हैं। पर मैंने अच्छी तरह काम सम्हाल लिया, तब भी ये नाखुश ही हैं।

जयंत : साहनी साहब तो जुलाई से तुम्हारी नौकरी पक्की कर रहे हैं, और तुम हो कि काम छोड़ने की बात कर रही हो।

शोभा : सब बेकार है, जयंत। एक समय था जब ऐसी तारीफों को सुनकर मैं सारे घर में नाची-नाची फिरती थी। पर अब तो मुझे जैसे इन सबसे डर लगता है। लगता है, जैसे जितना-जितना ऊपर से बढ़ती जा रही हूँ भीतर से उतनी ही मेरी जड़ें कटती जा रही हैं, मैं अपनी धरती से उखड़ती जा रही हूँ।

जयंत : तो इसमें इतना दुखी होने की क्या बात है ? यह तो बहुत ही स्वाभाविक है। अरे, पौधा छोटा होता है तो हम उसे गमले में रखते हैं, जब बढ़ जाता है तो जड़ से उखाड़कर धरती में नहीं गाड़ देते ?

शोभा : नहीं जयंत, मैंने तो यही तय किया है कि मैं यह काम छोड़ दूंगी। अपने घर की सुख और शान्ति यों नष्ट नहीं होने दूंगी।

जयंत : अजित ने कहा है तुमसे कि यह काम छोड़ दो।

शोभा : कहने के पचास ढंग होते हैं, वे सभी तो अपना रखे हैं।

जयंत : मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था।

शोभा : पर क्यों, आखिर क्यों ? जब मैं अच्छी तरह से यह काम सम्हाल रही हूँ, तब क्यों ?

जयंत : क्योंकि वह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि तुम्हारी अपनी भी कोई जगह हो, प्रतिष्ठा हो। मिसेज़ अजित की तरह ही तुम्हें देख सकता है, देखना चाहता है। श्रीमती शोभा देवी की तरह नहीं।

शोभा : लेकिन श्रीमती शोभा मिसेज़ अजित से भिन्न कहाँ है, वह तो मैं हर हालत में ही रहूँगी !

जयंत : पर अजित तो ऐसा नहीं सोचता है न। (कुछ ठहरकर) जानती हो, वह आजकल भीतर ही भीतर तुमसे ईर्ष्या करने लगा है !

शोभा : कैसी बातें करते हो, जयंत ? मुझसे क्या ईर्ष्या करेंगे भला ! ऐसा मुझमें है ही क्या ?

जयंत : तुम अपने आपको चाहे कुछ न समझो, पर बाहर तो तुम्हारी प्रतिष्ठा है ही। डिग्री कॉलेज की प्रिंसिपल होना—

शोभा : मेरी प्रतिष्ठा है तो क्या उनकी नहीं है ? आख़िर मैं उनसे भिन्न तो नहीं ही हूँ।

जयंत : (सिगरेट सुलगाते हुए) शोभा, तुम अजित को पत्नी की तरह देखती हो न, सो कुछ बातों पर तुम्हारी नज़र न जाना ही स्वाभाविक है। वरना ईर्ष्या अजित के ख़ून में मिली हुई है। सारी दोस्ती के बावज़ूद वह मुझ से हर बात में ईर्ष्या करता था, आज भी करता है। वह जो भी काम करता है, ईर्ष्या या होड़ की भावना से ही करता है।

(शोभा देखती रहती है मानो बात को समझ नहीं रही हो।)

जयंत : तुम्हारी शादी के एक साल बाद मैंने शादी की। मीना बी० ए० पास थी तो तुरन्त उसने तुम्हारी पढ़ाई शुरू की और एम० ए० करवाया। पहले उसे अपनी नौकरी से ऐसी शिकायत नहीं थी, पर जब से मुझे अंग्रेजी कंपनी में काम मिला तब से—

शोभा : हो सकता है तुम्हें लेकर उनके मन में ईर्ष्या हो, पर मुझे

लेकर ईर्ष्या करें यह बात तो—

जयंत : समझ में नहीं आती, क्यों ? आएगा शोभा, यह सब भी समझ में आएगा।

शोभा : मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आता मैं क्या करूँ ? जितनी कोशिश करती हूँ उन्हें खुश करने की, वे उतने ही नाराज़ होते जाते हैं। तुम्हीं बताओ आखिर किया क्या जाए ?

जयंत : (एकाएक उठकर पर्दे खींच-खींचकर खिड़कियाँ खोलने लगता है) अब तो धूप खत्म हुई, खिड़कियाँ तो खोलो। भीतर कितनी घुटन हो चली है। वाह ! बाहर तो बड़ा अच्छा हो रहा है ! (शोभा से) अजित कब तक लौटेगा ?

शोभा : पता नहीं !

जयंत : काम छोड़ने की बात भी मत सोचो। लगता है अब एक दिन बैठकर मुझे अजित से बात करनी पड़ेगी। बस यही है कि आजकल वह बात को सीधे ढंग से लेता नहीं। ताने कसेगा, टेढ़ी-टेढ़ी बातें करेगा, और कोई बस नहीं चलेगा तो भन्नाएगा—बकने लगेगा—। ख़ैर, मैं न उस के गुस्से से डरता हूँ न बकने से। यों भी बहुत दिनों से मैं सोच रहा था बात करने की—अब कर ही डालूँ। (एकाएक शोभा फूटकर रो पड़ती है, सिर दोनों हथेलियों में छिपा लेती है।)

जयंत : (उसके पास आकर सिर पर हाथ फेरते हुए) अरे, यह क्या, तुम रो रही हो, शोभा ! इसी तरह बचपना नहीं करते। रोने से तो कुछ होगा नहीं, बैठकर बात करेंगे। मैं अजित से बात करूँगा। जाओ, उठकर मुँह धोकर आओ। चलो उठो !

(शोभा थोड़ी देर पल्ले से आँसू पोंछती रहती है, फिर उठकर भीतर चली जाती है। थोड़ी देर बाद जीजी का प्रवेश।)

जीजी : अरे तुम ? अजित कहाँ है ?

जयंत : वह तो कहीं बाहर गया है।

जीजी : बाहर ? कब ? अभी मैं नहा रही थी तब तो भीतर आकर आवाज़ दी थी, और अभी चला भी गया। चाय भी नहीं पी ?

जयंत : पता नहीं, मैं अभी आया तब तो यहाँ नहीं था।

जीजी : अच्छा—। (भीतर चली जाती है)

(शोभा का प्रवेश)

जयंत : अच्छा शोभा, अभी तो चला। और देखो, तुम ज्यादा परेशान न होना। कल-वल अजित को पकड़कर बैठूँगा और साफ़-साफ़ बात कर लूँगा।

(जयंत का प्रस्थान। शोभा दरवाजा बन्द करती है। फिर निरुद्देश्य-सी अप्पी के बोर्ड के ऊपर लगे मोतियों को इधर से उधर घुमाती है। भीतर से जीजी का प्रवेश।)

जीजी : (शोभा की ओर गौर से देखती हुई) क्या बात है, शोभा ? तुम रोती हुई भीतर क्यों आई थीं अभी ? मैंने सोचा, अजित से कुछ कहा-सुनी हो गई, पर वह तो यहाँ था ही नहीं।

शोभा : कुछ नहीं जीजी, यों ही।

जीजी : मुझे इस लायक नहीं समझती हो कि अपनी बात बता सको, तो जबरदस्ती नहीं करूँगी, पर घर में रहती हूँ तो सारी स्थिति मैं भी समझती हूँ।

शोभा : (एकदम फूट पड़ती है) जीजी, आपको मैं माँ की तरह

समझती हूँ, और आपसे माँ-सा स्नेह पाया है।—आप बताइए न, इन्हें क्या होता जा रहा है ? जब देखो तब नाराज़, जब देखो तब ताने मारना, उल्टी-सीधी बातें करना। मैं ऐसा कौन-सा जुर्म कर रही हूँ, या पाप कर रही हूँ, जो ये इस तरह—

जीजी : (प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए) शोभा, इस तरह रोते नहीं, बच्ची। (थोड़ा ठहरकर) देखो, पाप या जुर्म तो तुम कुछ भी नहीं कर रहीं, कोई नहीं कहता कि तुम जुर्म कर रही हो—पर हाँ, कहीं कुछ गलत जरूर हो रहा है।

शोभा : (आवेश में) मुझे कोई बताता क्यों नहीं कि क्या ग़लत हो रहा है ? घर की सारी व्यवस्था ठीक चल रही है, सबका काम ठीक समय पर हो जाता है। कभी कोई ज़रा-सी कसर रह भी जाए तो उसी को लेकर तूफ़ान मचाया जाता है ?

जीजी : घर की व्यवस्था और काम समय पर न होना इतनी छोटी बातें हैं, शोभा, कि इनसे संबंध नहीं बिगड़ सकते। कभी नहीं बिगड़ सकते। बात इससे ज्यादा बड़ी और गहरी है।

शोभा : क्या है वह बड़ी और गहरी बात, मैं भी तो जानूँ आखिर ?

जीजी : (कुछ सोचकर) जानती हो शोभा, अजित तुम्हें बहुत प्यार करता है, बहुत ज्यादा। (शोभा प्रश्नवाचक दृष्टि से देखती रहती है) पहले उसे लगता था तुम उसकी हो, केवल उसकी। अब जैसे-जैसे तुम अपनी बाहरी जिम्मे-दारियाँ बढ़ाती जा रही हो उसे लगता है तुम इस घर से, उससे दूर होती जा रही हो। वह तुम्हें फिर से पहले

की तरह ही पाना चाहता है।

(शोभा बड़े ध्यान से सुनती रहती है)

शोभा : पर जीजी, ऐसा तो हमेशा होता ही रहता है। (फिर कुछ ठहरकर) शादी के तुरन्त बाद लगता है जैसे हर समय साथ बैठे रहो, पाँच मिनट का अलगाव भी बुरा लगता है। फिर बच्चे आते हैं तो माँ के सारे ध्यान और प्यार का केन्द्र बन जाते हैं। पति-पत्नी की यह दूरी तो बढ़ती ही जाती है। पर यह बाहरी दूरी, बाहरी अलगाव तो उनके भीतरी संबंधों को और मजबूत बनाता है। नहीं होता ऐसा ?

जीजी : होता है, पर तभी तक जब तक पत्नी का केन्द्र घर और बच्चे ही रहें।

शोभा : तब आप ही बताइए, जीजी, मैं क्या करूँ ? काम छोड़ दूँ ? अपने को घर और बच्चों में ही सीमित कर लूँ ?

जीजी : इस तरह आवेश में आकर कुछ भी करना ग़लत होगा। और देखो, बुरा न मानो तो एक बात और कहूँ।

(शोभा प्रश्नवाचक दृष्टि से उन्हें देखती है।)

जीजी : जयंत को अपने इस मामले से दूर ही रखो तो ज्यादा अच्छा होगा।

शोभा : क्यों ? क्या बात है ?

जीजी : यह तुम्हारा एकदम व्यक्तिगत मामला है, दूसरों के बीच में आने से कभी-कभी बात सँभलने के बजाय और बिगड़ जाती है, इसलिए।

शोभा : पर जयन्त तो शुरू से ही इस घर में घर के सदस्य की तरह ही समझा जाता रहा है।

जीजी : कभी-कभी घर के सब सदस्यों को भी सारी बातें नहीं बताई जातीं—व्यर्थ ही ग़लतफ़हमी हो जाया करती है।

(प्रसंग बदलकर) अच्छा चलो, उठकर मुँह धोओ। अप्पी आने वाली होगी। कम से कम उस पर तो इन सारी बातों का प्रभाव न पड़े। (शोभा ज्यों की त्यों बैठी रहती है। जीजी उसकी पीठ थपथपाती है) चलो चलो, उठो अब।

दोनों भीतर चली जाती हैं। धीरे-धीरे पूर्ण अंधकार हो जाता है।)

(दूसरा दृश्य)

(संध्या के पांच बजे का समय। ड्राइंग रूम खाली पड़ा है। बीच की मेज़ पर अप्पी का फ्रॉक पड़ा है, कुर्सी के हत्थे पर रिबन झूल रहा है। घंटी बजती है। नौकर आकर दरवाज़ा खोलता है। अजित का धीरे-धीरे प्रवेश।)

अजित : जीजी हैं ?

नौकर : भीतर हैं।

अजित : ज़रा भेज दो तो (नौकर जाने लगता है) और सुनो एक गिलास शिकंजवी भी लेते आना, चीनी एकदम कम ! (नौकर चला जाता है। अजित मेज़ पर चिट्ठियाँ देखने जाता है। जीजी का प्रवेश।)

जीजी : अरे, तुम अभी से आ गए ? मैंने तो सोचा शोभा आई है। चिट्ठी तो आज कोई नहीं है।

अजित : (सोफ़े पर बैठते हुए) बस जीजी, आज हो गया अपनी नौकरी का खात्मा ! (अप्पी के कपड़े एक तरफ़ हटा देता है)

जीजी : क्यों, इस्तीफ़ा मंज़ूर कर लिया गया ?

अजित : करते कैसे नहीं ? बाँधकर तो नहीं रख सकते न ?

जीजी : (चिंतित-सी) नहीं, मैंने सोचा—

अजित : इस्तीफ़ा देने के पहले जिस दिन मैंने बात की है न जीजी, उस दिन वह सुना आया था जनरल मैनेजर को कि मंजूर करने के सिवाय कोई रास्ता ही नहीं था उन लोगों के पास। न भी करते तो मैं—

जीजी : कहीं तुमने गुस्से ही गुस्से में जल्दबाजी तो नहीं कर दी ?

अजित : कोई जल्दबाज़ी नहीं। यहाँ इतने दिन काट दिए सो ही बहुत हैं। जब ये लोग कल के छोकरों को खोपड़ी पर ला-लाकर बिठा देंगे, जिनको न कोई तजुर्बा है न अक़्ल तो कौन बर्दाश्त करेगा ?

जीजी : सो तो ठीक है, पर पहले कहीं दूसरी जगह बात पक्की कर लेते। मेरा मतलब है यों एकाएक—

(शोभा का प्रवेश)

शोभा : अरे, आप आ गए ?

जीजी : अजित का इस्तीफ़ा मंजूर हो गया आज !

शोभा : अच्छा, हो गया ?

अजित : मैंने कोई बंदरघुड़की थोड़े ही दी थी। मुझे तो यहाँ अब काम करना ही नहीं है।

शोभा : वर्मा शैल की अर्ज़ी भेज दी ?

(नौकर शिकंजवी लेकर आता है)

अजित : भेज दी, आज मिस्टर शाह से मिलने भी गया था। उन का यही कहना है कि जगह तो ख़ाली होगी, बस ज़रा—

शोभा : यह जगह मिल जाए तो बहुत अच्छा हो ! इस नौकरी का तो मुझे क़तई अफ़सोस नहीं।

जीजी : (उठते हुए) शोभा, तुम्हारे लिए शिकंजवी भिजवाऊँ या चाय लोगी ?

शोभा : आप वैठिए, मैं खुद कह आती हूँ। (भीतर जाती है)

अजित : देख रहा हूँ जीजी, आप चिंतित हो उठी हैं।

जीजी : नहीं रे, मैं क्यों चिंतित होऊँगी ? वस तुम परेशान मत होना। ऊपर से तुम जितने हल्के-फुल्के वने घूमते हो, भीतर से उतने ही परेशान रहते हो। चिंता मुझे है तो तुम्हारी, नौकरी की नहीं।

(शोभा का प्रवेश। अप्पी के कपड़ों पर नज़र पड़ती है)

शोभा : यह क्या, फिर यहाँ कपड़े पटक गई अप्पी ? उसे एक कमरा दे रखा है, फिर भी घर के हर कोने में आप उस की हर चीज़ देख लीजिए। चावला साहव ने गाड़ी भेजी थी क्या ?

जीजी : हाँ, अभी आधा घंटा हुआ होगा गए। कह गए हैं छोड़ भी जाएंगे, देर हो तो चिंता न करें। (उठते हुए) अच्छा मैं ज़रा वलवीर को बाज़ार ही भेज दूं (भीतर जाती हैं)

शोभा : शाह साहव मिस्टर विलियम्स से नहीं कह सकते ?

अजित : कहने को तो उन्होंने फ़ोन किया था। पर वह कह रहे थे कि उनके संबंध ऐसे नहीं हैं कि विलियम्स वात मान ही ले। विलियम्स ऐसे ही लोगों पर अहसान करता है जिनसे उसका भी काम निकलता हो।

शोभा : यह विलियम्स वही हैं न, जिनसे हम एक वार जयंत के यहाँ दावत में मिले थे ! जयंत से वात करके देखो न, कैसे संवंध हैं ?

अजित : जयंत के क्या संवंध होंगे ! वह ऐसा कौन-सा बड़ा आदमी है !

शोभा : पूछकर देखने में क्या हर्ज है ? यदि आए तो पूछ लेना ?

अजित : नहीं—और मैं नहीं चाहता कि तुम भी इस बारे में उससे कोई बात करो।

(शोभा चुप रहती है नौकर चाय लेकर आता है। टेलीफ़ोन की घंटी बजती है। अजित उठाता है।)

शोभा : हलो-ऽ—। जी हां, मैं बोल रहा हूँ अजित।—जी—जी—ऐं ? ओह, तो यह बात है ?—जी—जी—बात तो बहुत ही अच्छी तरह से की थी। यानी मुझे तो पूरी उम्मीद हो चली थी, शाह साहब। अच्छा-ऽ—मैं आ जाऊँ ? मैं अभी हाज़िर हुआ—बस अभी आया। (फ़ोन रखता है)

शोभा : क्या कहा शाह साहब ने ?

अजित : (कुछ घबराया-सा है) सुना है मिस्टर विलियम्स की नज़र में कोई और है।

शोभा : अच्छा ?

अजित : बुलाया है। देखो, क्या होता है ? मुझसे तो इस तरह बात कर रहा था जैसे बस तुरन्त ही नियुक्ति-पत्र भेज देगा। इन लोगों का कुछ पता भी तो नहीं लगता।

शोभा : मिल आइए, कुछ हो जाता है तब तो ठीक ही है, वरना देखी जाएगी—। (हल्के से) आप कहें तो जयंत से बात करूँ—इधर आएँगे शायद।

अजित : फिर वही बेकार की बात। जयंत, जयंत ! तुम्हारी नज़रों में जयंत बहुत बड़ा आदमी होगा। बाहर क्या है ? अंग्रेजी कंपनी में काम करने से ही कोई आदमी बड़ा नहीं हो जाता, समझीं ! वह मेरी क्या सिफ़ारिश करेगा (शोभा चुप रहती है। अजित चला जाता है। भीतर से जीजी प्लेट में कुछ नाश्ता लिये हुए आती हैं।)

जीजी : अरे, अजित कहाँ चला गया ?

शोभा : शाह साहब का टेलीफ़ोन आया था। उन्होंने बुलाया था, चले गये।

जीजी : मैं तो उसके लिए प्याज की पकौड़ी लाई थी। तुम खाओगी?

शोभा : नहीं जीजी, इस समय बिल्कुल भी इच्छा नहीं हो रही है (जीजी प्लेट वापस ले जाती है। दो मिनट बाद ही जयंत का प्रवेश।)

जयंत : अजित आ गया न ? मैंने ऑफ़िस फ़ोन किया था, मालूम हुआ चला गया है।

शोभा : आए तो थे, किसी से मिलने चले गये हैं। (एक क्षण रुककर) जयंत, अजित का इस्तीफा मंजूर कर लिया गया आज !

जयंत : सच ? तब तो परेशान होगा वह ?

शोभा : नहीं ऐसी बात तो नहीं है, वहाँ से तो इन्हें अब छोड़ना ही था।

जयंत : सो तो ठीक है, शोभा। पर बिना दूसरी जगह काम लिए छोड़ देने से बाज़ार में क़ीमत घट जाती है।

शोभा : बर्मा शैल में कोशिश तो कर रहे हैं। उसी सिलसिले में गए हैं शाह साहब के पास।

जयंत : वह उसने बताया था ! बात कहाँ तक बढ़ी ?

शोभा : बताया था तुम्हें ?

जयंत : हाँ, बताया तो था, क्यों ?

शोभा : (कुछ सोचते हुए) वह जगह मि० विलियम्स के नीचे है यानि उसके हाथ में है।

जयंत : विलियम्स सेंडर्स ?

शोभा : हाँ ! तुम तो उन्हें जानते ही हो न ? हम तो तुम्हारे ही यहाँ उनसे एक बार दावत में मिले थे।

जयंत : यों व्यक्तिगत परिचय तो नहीं, पर कामकाज के स्तर पर तो बहुत अच्छी जान-पहचान है। तुम कहो तो बात करूँ ?

शोभा : क्या बताऊँ जयंत—

जयंत : क्या बात है ?

शोभा : तुम एक काम करो। जसे भी हो, जिसकी मदद से भी हो, कोशिश करो जयंत, यह काम इन्हें मिल ही जाना चाहिए।—सुना है वह किसी और को चाहता है। (एक मिनट के लिए रुक जाती है) पर जयंत, एक बात याद रखना। अजित को इस बात का ज़रा भी आभास नहीं होना चाहिए कि मैंने तुमसे कुछ कहा है या कि तुमने किसी तरह की कोशिश की है।

जयंत : (आश्चर्य से) क्यों ?

शोभा : बस, यह मत पूछो। बिना बताए यदि कुछ कर सको तो करो। मैं तुम्हारा अहसान कभी नहीं भूलूंगी, जयंत ! (स्वर भर्रा जाता है)

जयंत : (कुछ सोचते हुए) ओह, तो यह बात है ? अच्छा शोभा, मुझसे जो होगा जैसे भी होगा, मैं करूँगा, ज़रूर करूँगा। अजित का कोई काम करना मेरे लिए अपना काम करने के बराबर है। पर अजित के मन में इतना परायापन आ गया है, वह मुझसे इतना दुराव रखने लगा है, यह आज ही मालूम हुआ। खिचा-खिचा और कटा-कटा तो वह कई दिनों से रहता है, पर बात यहाँ तक—

शोभा : जयंत ! अजित का चित्त आजकल ठिकाने नहीं है, उनकी किसी बात को लेकर तुम बुरा मत मानो। मेरे साथ तो तुम जानते ही हो, वे आजकल कैसा व्यवहार

करते हैं। जब से यह इस्तीफ़ा दे दिया तब से तो हालत और भी खराब हो गई है।

जयंत : जयंत अजित की बात का बुरा मानता होता शोभा, तो शायद आज से दो साल पहले ही इस घर में आना छोड़ देता। उसके हर व्यवहार को मैंने दोस्ताना ढंग से लिया क्योंकि मैं कभी भूल नहीं पाता कि यह मेरा वही दोस्त है जो होस्टल में मेरी बीमारी के दिनों में महीनों रात-रात भर जागा है। मीना के अलगाव के दुख को मैंने इसकी गोद में ही रो-रोकर हल्का किया है। उस समय उसने इस घर को मेरे लिए ऐसा बना दिया कि मैं अपने घर की कमी को महसूस न कर सकूँ। सच कहता हूँ, यहाँ आते समय मुझे कभी लगता ही नहीं कि मैं किसी दूसरे के घर जा रहा हूँ। इस घर के बड़े-बड़े निर्णय मैं इस तरह लेता हूँ, मानो इस घर पर मेरा पूरा-पूरा अधिकार है—

शोभा : सो तो है ही, जयंत। तुम्हारे कहने से ही तो मैंने अजित के मना करने पर भी यह काम लिया था। तुम्हारे इस अधिकार को कौन नकारता है?

जयंत : (जोर से) अजित नकारता है। उसने ज़रूर तुमसे मना किया होगा यह सब मुझसे कहने के लिए। वह शायद मेरा अहसान नहीं लेना चाहता।

(फिर एकाएक ही व्यथित-से स्वर में) पर यह तो सोचता कि मैं क्या अहसान जताने जा रहा था? कभी किया है ऐसा? हमारे बीच में तो कभी ऐसी बात नहीं थी। तुम भी आज अहसान न भूलने की बात कर रही हो।—क्या हो गया है तुम लोगों को?

शोभा : (बहुत ही स्निग्ध-से स्वर में) जयंत, कम से कम मेरे

बारे में तो ऐसा मत सोचो। मैंने तो, जब से शादी होकर आई, तबसे तुम्हें देवर की तरह माना है। कभी कोई अलगाव-दुराव नहीं रखा—इनका भी—

जयंत : आज मैं इससे बात करके ही रहूँगा। बात तो मैं इससे उस दिन से ही करना चाह रहा था, पर बीच में ही इसने इस्तीफ़ा दे दिया तो सोचा, अभी नहीं करूँगा। पर आज—

शोभा : तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, जयंत, अभी नहीं। इन्हें यह काम मिल जाए, उसके बाद तुम चाहे जितना लड़ लेना इनसे, पर अभी नहीं।

(जयंत परेशान-सा कमरे में चक्कर लगाता है। शोभा चुप रहती है। अजित का प्रवेश।)

शोभा : अरे, तुम आ गए? क्या हुआ?

अजित : कुछ नहीं। (जयंत और शोभा को इस अंदाज से देखता है मानो सारी स्थिति को भाँप लेना चाहता हो) तुम कब आए, जयंत?

जयंत : बस अभी ही आ रहा हूँ! तुम क्या बहुत थके हुए हो?

अजित : नहीं तो, क्यों?

जयंत : जरा मेरे साथ बाहर चल सकते हो? (शोभा भयभीत-सी नजरों से देखती है)

अजित : क्यों, कहाँ चलना है?

जयंत : जहाँ भी मैं ले चलूँ।

शोभा : अभी यहाँ से ले जाओगे, जयंत? सारे दिन के थके-माँदे तो आए हैं।

जयंत : तुम बीच में मत बोलो। मैं कोई रिक्शा खिंचवाने नहीं ले जा रहा हूँ। इससे कुछ ज़रूरी बात करनी है, गाड़ी में ले जाऊँगा, गाड़ी में छोड़ जाऊँगा।

शोभा : तो यहाँ बैठकर कर लो न ? मेरे सामने करने की नहीं हो तो मैं भीतर चली जाती हूँ।

जयंत : तुम इसको इतना बाँधकर क्यों रखना चाहती हो ? तुम्हारा पति है तो मेरा भी दोस्त है। चलो, अजित, उठो।

(अजित एक क्षण कुछ तय ही नहीं कर पाता कि क्या करे। शोभा आँखों से जयंत को समझाना चाहती है। एकाएक अजित उठकर चलने को तैयार हो जाता है।)

जयंत : घंटे-डेढ़ घंटे में छोड़ जाऊँगा। चिन्ता मत करना।

शोभा : चिंता की क्या बात है ? मैं तो—

(दोनों चले जाते हैं। शोभा भी दरवाजा बंद करके भीतर चली जाती है। धीरे-धीरे अन्धकार होता है।)

(तीसरा दृश्य)

(अगले दिन सवेरे नौ बजे। कमरा खाली पड़ा है। भीतर से अजित आता है। बाहर जाने के लिए तैयार है। मेज से सिगरेट और लाइटर उठाता है।)

अजित : वल्लू, दरवाजा बंद कर लेना।

(अजित का प्रस्थान। शोभा प्रवेश करती है। उसकी आँखें हल्की-सी सूजी हुई हैं। दरवाजा बंद करती है एक क्षण खड़ी रहकर कुछ सोचती है। फिर टेलीफ़ोन करती है।)

शोभा : हलो-ऽ—। हाँ, जयंत, मैं बोल रही हूँ। कल की सारी बातचीत के लिए माफ़ी माँगना चाहती हूँ। ऐं-ऽ—? मुझे बीच में बोलने का कोई अधिकार नहीं है ?—है, जयंत है ! मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि ये इस स्तर

पर उतर आएँगे। सारी रात क्या गुज़री है मुझ पर कि बता नहीं सकती। किस बात की है यह कुंठा ? क्या नहीं है अजित के पास ?—क्या ? मैं नहीं समझ सकूँगी ? हाँ सच, अब तो यही लगने लगा है कि मैं अजित को बिलकुल नहीं समझती। इतने साल साथ रहने के बाद भी नहीं। क्या सोच रहे होगे तुम भी !—कुछ नहीं सोच रहे ? सच कह रही हूँ, जयंत, अभी ये बेकार नहीं होते न, तो मैं भी बता देती इन्हें कि ऐसी ऊलजलूल बातें सोचने का क्या फल होता है !—हाँ—हाँ बात की थी विलियम्स से ? यह सब सुनने के बाद भी ? मैं होती तो कभी नहीं करती।—हूँ—अड़वानी से कहलवाओगे ? वह कह देगा तो उम्मीद है ?—तुम्हारी जो मर्ज़ी हो करो। मेरा तो गुस्से और अपमान से रोम-रोम जल रहा है।—यह बात तुम बिलकुल छिपा गए ? मैं भी सोच रही थी कि सारे पुराण खुले, यह बात नहीं आई।—सच कह रहे हो ? मेरी बात तुमने मान ली ! क्या कहूँ जयंत, तुम सचमुच महान हो। कल तो बराबर मन में यही डर बना रहा। (एकाएक दरवाज़े की घंटी बजती है) कोई आया है, अभी रखती हूँ। तुम इधर नहीं आ रहे ?—क्या कहा, अब इस घर में कभी नहीं आओगे ? मेरे पास भी नहीं ? (फिर घंटी बजती है) अच्छा, फिर बात करूँगी। (फ़ोन रख देती है)

(शोभा दरवाज़ा खोलती है। मीना का प्रवेश)

शोभा : अरे, मीना ! एक सप्ताह बाद आज तुम्हारी शक्ल दिखाई दी है। कहाँ गायब रहीं इतने दिनों तक ?

मीना : मैं तो कल दोपहर में भी आई थी। मालूम था कि तुम लोगों से तो मुलाकात होगी नहीं, पर इधर से निकली

तो आ गई। बड़ी देर तक जीजी से गप्पें मारती रही। अजित क्या घर पर नहीं हैं ?

शोभा : जीजी ने तो बताया नहीं। शायद खयाल से उतर गया होगा। वे तो बाहर गए हैं।

मीना : (शोभा की आँखों की ओर लक्ष्य करके) तुम्हारी आँखें ऐसी-ऐसी क्यों हो रही हैं ? रोई थीं क्या ?

शोभा : (टालते हुए) नहीं तो, गर्मी की वजह से ! मैं तो सोच रही थी, मीना, कि तुम्हारा बंगाल का दौरा समाप्त हुआ अब तुम कलकत्ता ही रहोगी तो कुछ दिन तुम्हारा साथ ही रहेगा। पर देखती हूँ तुम्हारी व्यस्तता का कोई अन्त ही नहीं।

मीना : नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मैं तो चाहती हूँ और अधिक व्यस्त रहूँ, इतनी अधिक कि पता ही नहीं चले कि दिन किधर जाते हैं।

शोभा : क्यों, दिन निकालना क्या बहुत भारी पड़ता है ?

मीना : नहीं, फिर भी खाली समय आदमी को बहुत-सी व्यर्थ की बातें सोचने को मजबूर कर देता है। जो हम नहीं सोचना चाहते वही सब दिमाग को घेरे रहता है।

शोभा : (एकटक मीना को देखती रहती है) मीना, मन की बात क्या शब्दों के द्वारा ही जानी जा सकती है ? तुम्हारे बिना कुछ कहे भी मैं बहुत कुछ समझ सकती हूँ।

मीना : तुमसे कुछ छिपाने का मैंने कभी प्रयत्न भी नहीं किया। (कुछ ठहरकर) आठ महीने पहले कलकत्ता आई थी, तब से बराबर गाँवों में घूम रही हूँ, पर एक अजीब-सी बेचैनी, अजीब-सा उखड़ापन बराबर ही महसूस कर रही हूँ।

शोभा : सच-सच बताना, मीना। इस सारी बेचैनी में क्या कहीं

भी जयंत नहीं हैं ?

मीना : एकदम नहीं हैं, यह भी नहीं कह सकती। पर एक मात्र जयंत ही हैं यह भी ग़लत है। जयंत शायद नहीं ही हैं। पर हाँ जयंत को देखकर मन की रिक्तता और चुभने लगी है, खालीपन और अधिक गहरा गया है !

शोभा : (बहुत स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ फेरकर) मीना।

मीना : जानती हो, शोभा, परसों दोपहर को बालीगंज वाले घर के सामने से गुजरी। पिछली बार भी इतने दिनों कलकत्ता रह गई, पर उधर से कभी नहीं गुज़री। बड़ी विचित्र-सी अनुभूति हुई। बरामदे में मैंने बड़े शौक से मनी प्लांट के जो गमले लटकाए थे, वे वहाँ नहीं थे। सारा बरामदा बड़ा सूना-सूना लग रहा था। मन हुआ एक बार भीतर जाकर देखूँ, कहाँ क्या-क्या बदल गया है ? मन और परिश्रम से जमाए उस घर की क्या हालत है ? रघू कैसा है ? बड़ी मुश्किल से अपनी इस इच्छा को रोक पाई। बाद में बड़ी देर तक सोचती भी रही कि जिस घर को और जिंदगी को अपनी इच्छा से छोड़ आई उसके प्रति यह कैसा मोह ?

शोभा : कितनी ही बार सोचती हूँ, मीना, कि घर छोड़कर कैसा लगता होगा ? घर छोड़कर ही कोई औरत क्या उस घर को भूल सकती है जिसे वह अपने हाथों से बनाती है, सँवारती है ?

मीना : घर यों आसानी से छूटता भी नहीं, शोभा ! कोई बहुत बड़ी मजबूरी न हो, या घर से भी बड़ा कोई आकर्षण न हो, तब तक घर छोड़ा नहीं जाता।

शोभा : तुम्हें अपने इस निर्णय पर अफ़सोस होता है कभी-कभी ?

मीना : (कुछ सोचते हुए) जिस व्यक्ति और घर को छोड़ा उसके लिए तो कोई अफ़सोस नहीं है मन में। जो अपमान और मानसिक यातना मैंने वहाँ पाई, अनाथ और बेसहारा औरतों के स्नेह, आदर और अपनत्व के कारण ही उस व्यथा को मैं किसी तरह भूल सकी। पर अब देखती हूँ जिन बेसहारा औरतों को मैं अपनी जिन्दगी का सहारा बनाना चाहती हूँ, वे अपने ही सहारे की तलाश में इधर-उधर दौड़ती फिरती हैं। जिसको मिल जाता है, वह चली भी जाती है।—और फिर मैं बड़ा अकेला-अकेला और बेसहारा महसूस करने लगती हूँ।

(जीजी का प्रवेश)

जीजी : अरे मीना, तुम कब आईं ? और लो शोभा, मैं तो बताना ही भूल गई कि कल दोपहर में भी ये आई थीं।

मीना : कोई बात नहीं, मैं आज फिर आ गई।

जीजी : (शोभा से) अजित अप्पी को लेकर आएगा या बल्लू को भेजूँ ?

शोभा : मेरी तो इनसे कोई बात नहीं हुई, आप भेज ही दीजिए।

जीजी : तुम लोगों के लिए चाय भिजवाऊँ ?

मीना : जीजी, चाय पीने की इच्छा तो सचमुच हो रही है ! (जीजी भीतर जाती हैं) शोभा, कल जीजी से बड़ी देर तक बातें करती रही। मैं तो इतनी ज्यादा प्रभावित हुई हूँ इनसे कि बता नहीं सकती। पहले दिन देखा था तो सोचा था कि यों ही तुम्हारी कोई विधवा ननद होंगी। कल लगा पढ़ी-लिखी चाहे अधिक न हों, पर किसी बात पर गहराई तक सोचने का ऐसा माद्दा शायद ही किसी औरत में हो।

शोभा : मेरी तो खुद इन पर बड़ी श्रद्धा है। अपनी उम्र से कहीं

अधिक आधुनिक और विचारों में बेहद संतुलित। पर हैं बड़ी बदकिस्मत। सोलह साल की उम्र में ही विधवा हो गईं।

मीना : कोई बच्चा भी नहीं है इनके ?

शोभा : नहीं, शादी के छः महीने बाद ही तो विधवा हो गई थीं। उस जमाने में विधवा-विवाह होते नहीं थे। पिताजी ने ससुराल से कानपुर बुला लिया, और पढ़ाई जारी करवा दी। पर तब विधवा लड़की स्कूल जाए यही बड़ी बदनामी की बात थी। सो पिताजी ने तंग आकर घर बिठा लिया। मैट्रिक की सारी तैयारी की थी, बस इम्तिहान नहीं दे सकी थीं। इसी ग़म में माताजी की मृत्यु हो गई, तो बस कानपुरवाला घर सम्हालना इनका काम हो गया। मेरे लिए तो सास कहो, ननद कहो, या माँ कहो, यही हैं।

मीना : पर कोई कुंठा नहीं, कोई गाँठ नहीं। वरना ऐसी स्थिति में कोई सहज नहीं रह पाता है।

शोभा : मुझे तो खुद आश्चर्य होता है। सचमुच कमाल की औरत हैं। जब मैंने कॉलेज का काम लिया था तो अप्पी छोटी थी। अजित ने इन्हें आने के लिए लिखा तो तुरन्त आ गईं। हम सबको इतने प्यार से रखती हैं कि बस।

(नौकर चाय लेकर आता है। शोभा बनाती है।)

मीना : शोभा एक बात पूछूं ? कल जीजी तुम्हारे और अजित के बारे में बता रही थीं। अजित की नौकरी के बारे में भी बता रही थीं। सारी बात जानकर बहुत दुख हुआ। तुम लोगों के बारे में तो मैं इस प्रकार की कोई कल्पना भी नहीं कर सकती हूं। जीजी चाहती हैं कि मैं तुमसे और अजित से बात करूं।

शोभा : (खिन्न-से स्वर में) मुझसे जितनी चाहो बात कर लो, पर अजित के सामने तो यह भी न दिखाना कि तुम्हें कुछ मालूम है। कल रात जयंत इन्हें पकड़ कर ले गए। वे कई दिनों से बात करना चाह रहे थे। पर इन्होंने जिस तरह की बातें कीं—मैं तो अवाक् रह गई। अभी जयंत से तो बात भी नहीं हुई—पता नहीं और भी क्या कहा होगा। सच मीना, मैं तो कल्पना भी नहीं कर सकती कि अजित इस स्तर पर भी उतर सकते हैं। कल रात भर सो नहीं सकी। अब तो लगता है सारी बात पर नए सिरे से ही सोचना होगा।

मीना : आखिर बात क्या हुई ?

शोभा : छोड़ो मीना, मुझसे वह कहा भी नहीं जाएगा। दुःख इसी बात का है कि इन्हें अपने दोस्त पर विश्वास नहीं रहा, अपनी पत्नी पर विश्वास नहीं रहा—पता नहीं, क्या होता जा रहा है इन्हें ? (आवाज भर्रा जाती है)

मीना : (कुछ सोचते हुए) मैं तो यहाँ थी नहीं, इसलिए कुछ भी कह पाने की स्थिति में नहीं हूँ। पर कल जीजी की बातों से भी कुछ ऐसी ध्वनि निकली अवश्य थी कि जयंत तुममें बहुत दिलचस्पी ले रहे हैं, तुम्हें कुछ ऐसी राह पर ले जाना चाह रहे हैं, जिस पर चलकर तुम अजित से दूर होती जाओ।

शोभा : (खीझकर) कैसी दिलचस्पी, कैसी राह ? मैं कोई नासमझ बच्ची हूँ जो कोई मुझे मनचाही राह पर ले चलेगा ? बस यह प्रिंसिपल की जगह दिलवाने में उन्होंने बहुत कोशिश की, उन्हीं की वजह से काम मुझे मिला भी है—अब इसका जो चाहे अर्थ लगा लो।

मीना : नाराज़ होने की बात नहीं है—शोभा ! सारी प्रतिभा

और बुद्धिमानी के बावजूद तुम शायद कहीं बहुत ज्यादा सीधा और सरल भी हो। तुम्हारी बात मैं नहीं जानती, पर जयंत अनजाने में ही यह सब कर सकता है। (कुछ ठहर कर) यों जान-बूझकर वह स्वयं नहीं चाहता, पर अनजाने करता वही सब है। शुरू से ही तुम लोगों का सुखी परिवार उसके लिये हल्के-से कष्ट का कारण रहा है।

शोभा : दो दिन पहले भी यदि तुम यह बात कहतीं तो मैं मान लेती, पर आज नहीं मान सकती। तुम आई तब उन्हीं का फ़ोन आया था। कल की सारी बात हो जाने के बावजूद वह अजित की नौकरी के लिए कोशिश कर रहे हैं। और मैं जानती हूँ कि जब वह किसी चीज़ को हाथ में लेते हैं तो ज़मीन-आसमान एक कर देते हैं। उनका कल का व्यवहार और कल की बातें सुनकर तो मेरा मन श्रद्धा से भर उठा है, और ये हैं कि बैठे-बैठे—

मीना : मैंने कहा न, मुझे सारी बात मालूम ही नहीं। मैंने तो यों ही अपनी धारणा बता दी थी। हो सकता है, मैं एकदम ग़लत होऊँ।

शोभा : जयंत तो जयंत, कम से कम मुझ पर तो विश्वास रखा होता। मुझे तो ये जानते हैं। मुझे तो सारा का सारा बनाया ही इन्होंने है। मुझ पर सन्देह ? सच कहती हूं मीना, कल रात जब अजित के मुँह से यह सब सुना, तब से मन कर रहा है कहीं चली जाऊँ, एक क्षण भी इस घर में नहीं रहूँ। (फूट पड़ती है)

मीना : अरे, अरे, यह क्या ? (पीठ सहलाती है) क्या कहूँ, कुछ भी तो समझ में नहीं आता—केवल दुःख होता है। पर शोभा, इतना जरूर कहूँगी कि आवेश में आकर कोई ग़लत काम न कर बैठना।

शोभा : तुम्हारी जैसी स्थिति में होती तो सचमुच ही कहीं चली जाती, पर मैं तो जा भी नहीं सकती।

मीना : (कुछ सोचते हुए) तुम्हारी छुट्टियाँ कब से हैं ?

शोभा : वस एक सप्ताह बाद से ?

मीना : एक काम करो। तुम छुट्टियों में कहीं बाहर चली जाओ ! सारी स्थिति से कटकर ज़्यादा अच्छी तरह सोच सकोगी। मन बदल जाएगा।

शोभा : मैं खुद जाना चाहती हूँ। पर अभी जाऊँगी तो सोचेंगे कि लो मैं तो वेकार हूँ, और इसे सैर-सपाटे सूझ रहे हैं। प्रिंसिपल है, इसे किसी की क्या परवाह ? आजकल हर वात के दो अर्थ निकाले जाते हैं !

मीना : नहीं, नहीं, ऐसी हालत में तुम्हारा जाना और भी ज़रूरी है। मान लो अजित को एक महीना और काम नहीं मिले तो सारे दिन तुम लोग घर में वैठे-वैठे लड़ना। इस तरह तो स्थिति वद से वदतर हो जाएगी। (शोभा कुछ कहती नहीं, सोचती रहती है) तुम कुछ कहकर अजित को समझा दो, लेकिन यहाँ से चली जरूर जाओ।

शोभा : देखो !

मीना : अच्छा शोभा, इस समय तो चलूँगी। और देखो तुम ज़्यादा दुखी मत होना। घर में यह सव तो चलता रहता है। एक-दो दिन में मैं फिर आऊँगी।

शोभा : (बड़े बुझे-से स्वर में) ज़रूर आना मीना ! अव तो शायद यहाँ जयंत भी नहीं आएँगे—दो वात भी किसी से करना चाहूँ तो कोई नहीं है !

मीना : आऊँगी, आऊँगी, ज़रूर आऊँगी।

(मीना जाती है, शोभा दरवाजा बन्द करके भीतर

चली जाती है। दो मिनिट रंगमंच खाली रहता है; फिर घंटी बजती है। नौकर आकर दरवाजा खोलता है। सेठ संपतलाल का प्रवेश। वेशभूषा से ही सम्पन्न लगते हैं।)

सेठ : प्रिंसिपल साहिबा हैं घर में ?

नौकर : जी, हैं, आप बैठिए।

(सेठ जी बैठते हैं, चारों ओर देखते हैं। भीतर से शोभा का प्रवेश। दोनों एक-दूसरे को नमस्कार करते हैं।)

सेठ : आप ही प्रिंसिपल साहिबा हैं न ?

शोभा : जी, कहिए ?

सेठ : मेरी पोती आपके कॉलेज में पढ़ती है, पहले साल में—कमला संपतलाल।

शोभा : (कुछ याद करते हुए) जी हाँ, पढ़ती है।

सेठ : मैं उसी का बाबा हूँ, सेठ संपतलाल। नाम सुना होगा आपने। चावल का कारोबार है अपना, आसाम में चाय के बग़ीचे भी हैं, बम्बई में कपड़े की मिलें भी हैं दो, और—

शोभा : (बीच में बात काटकर) मैं आपके लिए क्या कर सकती हूँ ?

सेठ : ही—ही—ही—। भौत नाम सुना है आपका। कमला तो भौत ही तारीफ़ करती है आपकी।

शोभा : बेहतर होगा आप यह बताएँ कि मैं आपके लिए क्या कर सकती हूँ।

सेठ : (चारों ओर देखकर) अहा-ऽ !—क्या घर रखती हैं आप! लोग-बाग कहते हैं कि पढ़ी-लिखी लड़कियाँ घर-बार नहीं देखतीं। अब कोई कहे ? जैसा नाम सुना था, वैसा ही पाया। कमला तो भौत ही तारीफ़ करती

है आपकी !

शोभा : क्या मैं जान सकती हूँ कि—आपको क्या काम है ?

सेठ : वह—वह—वह इस बार आपने कमला को फ़ेल कर दिया, उसी के बारे में—

शोभा : मैंने फ़ेल कर दिया ? उसने काम अच्छा न किया होगा तो फेल हो गई होगी।

सेठ : सो कुछ नहीं, वह एक ही बात है। पर जो हो गया सो हो गया। अब आप उसे अगले दर्जे में चढ़ा दीजिए।

शोभा : यह कैसे हो सकता है, सेठ साहब ? जो फेल है उसे चढ़ाया कैसे जा सकता है ?

(अजित का प्रवेश। सेठ जी को देखकर हल्के-से भृकुटि तन जाती है, बिना कुछ बोले भीतर चला जाता है।)

सेठ : मेरी तो यही समझ में नहीं आता कि फ़ेल कैसे हो गई। दो-दो तो प्रोफ़ेसर रखे हैं। एक-एक को दो सौ रुपया महीना देता हूँ। एक और रख दूंगा, इस बार तो आप चढ़ा दीजिए।

शोभा : देखिए सेठ जी, विद्या कोई चाय या चावल तो नहीं जिसे आप पैसे से खरीद लेंगे। आप नंबर देखना चाहेंगे उसके ?

सेठ : अरे नहीं—नहीं, नंबर-फंबर की बात नहीं। बस, मुझे तो इस साल उसे चढ़वाना है। (ज़रा आगे झुककर धीरे से) देखिए, इस बार तो आप चढ़ा दीजिए, बाक़ी जो बात हो हमसे कहिए, क्या सेवा की जाए आपकी ?

शोभा : (डाँटकर) क्या समझ रखा है आपने क़ॉलेज को ?

सेठ : अरे, आप नाराज़ क्यों होती हैं ?

शोभा : आप यहाँ से तशरीफ़ ले जा सकते हैं ! मैं आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकूंगी !

सेठ : (तैश में आकर) तो आप नहीं चढ़ाएँगी ? ठीक हैं, आप यह मत सोचिए कि कलकत्ते में आपका ही कॉलेज है। मैं जहाँ चाहूँ इसे भर्ती करा सकता हूँ। न दूसरे साल में करवा दिया तो मेरा नाम सेठ संपतलाल नहीं। हूँ—! (प्रस्थान)

(शोभा दरवाजा बन्द करके भीतर चली जाती है। धीरे-धीरे रंगमंच पर अंधकार होता जाता है। फिर जब उजाला होता है तो रात्रि के दस बजे हैं। भीतर से अजित आकर बत्ती जलाता है। अलमारी में से एक किताब निकालकर पढ़ता है, फिर रख देता है। बीच मेज से अखबार उठाकर देखता है उसे भी रख देता है। अन्त में दोनों हथेलियों में सिर-मुँह ढँककर बैठ जाता है। जीजी का भीतर प्रवेश। एक क्षण उसे इस रूप में देखती हैं फिर उसके सिर पर हाथ फेरती हैं।)

जीजी : (बड़े ही स्निग्ध-से स्वर में) अजित ! (अजित मुंह उठाकर ऊपर देखता है) क्या बात है, भैया ? इस समय यहाँ कैसे बैठे हो ?

अजित : कुछ नहीं, यों ही। कुछ पढ़ना चाह रहा था, पर सिर में दर्द हो रहा है, सो पढ़ा नहीं गया।

जीजी : सिर दबा दूँ !

अजित : नहीं-ऽ-! अपने-आप ठीक हो जाएगा। आइए, बैठिए ! (जीजी अजित के पास ही बैठ जाती हैं।)

जीजी : बात हुई शाह साहब से, कुछ पता चला ?

अजित : हाँ-ऽ! जगह जुलाई से खाली होगी। पर कोशिशें अभी से हो रही हैं उसके लिए।

जीजी : हो जाए, हो जाए। नहीं तो कलकत्ते में नौकरियों की कौन ऐसी कमी है ? तुम इस तरह परेशान मत होओ !

अजित : नौकरी का तो कुछ न कुछ होगा ही, जीजी। नहीं भी हुआ तो दो-चार महीने तो भूखों मरने की नौबत आने से रही।

जीजी : तब क्यों तुम इतना परेशान रहते हो! भीतर ही भीतर घुटते रहते हो।

अजित : क्या करूँ, जीजी, बाहर-भीतर सभी तरफ़ की तो परेशानी है। मुझे लगता है जैसे सब ओर से मुझे निकाल दिया गया है। आप ही बताइए जीजी, मैं क्या करूँ! क्या करना चाहिए मुझे?

जीजी : (पीठ पर हाथ फेरते हुए) कुछ नहीं करना चाहिए। सिर्फ इतना ही करो कि इन बातों पर बहुत अधिक सोचना छोड़ दो। (कुछ ठहरकर) आज शोभा पूछ रही थी कि वह छुट्टियों में अप्पी को लेकर कुछ दिनों के लिए दार्जिलिंग चली जाए क्या? क्या सोचते हो तुम?

अजित : मैं किसी के बारे में कुछ नहीं सोचता। जो जिसकी इच्छा हो करे।

जीजी : मैं भी सोचती हूँ कि वह चली जाए तो अच्छा रहेगा। पर शाम को उसने बताया कि उसने जाने का इरादा ही छोड़ दिया। तुम दोनों के दिमाग़ों का मुझे तो कुछ पता ही नहीं चलता।

अजित : (व्यंग्य से) सलाहकार साहब ने मना कर दिया होगा तो इरादा छोड़ दिया!

जीजी : अजित, देख रही हूँ कि एक व्यर्थ के सन्देह को पाल-पोसकर तुम अपना घर बिगाड़ने पर तुले हुए हो! (अजित चुप रहता है) चलो, उठकर खाना खाओ! बैठे-बैठे व्यर्थ की बातें सोचते रहते हो। अपनी पत्नी के लिए यह सब सोचते हुए तुम्हें—(रुक जाती है)

अजित : कह लीजिए, कह लीजिए !

जीजी : मुझे कुछ नहीं कहना।—चलो, खाना खाने !

अजित : मुझे भूख भी नहीं है, जीजी, और सिर भी दर्द कर रहा है। खाने की ज़रा भी इच्छा नहीं है।

जीजी : (ग़ौर से देखते हुए) अजित, यों भूख काटने से दुःख नहीं कटते, भैया। मन तो खराब है ही, अब क्या शरीर भी खराब करके मानोगे ?

अजित : एक समय न खाने से कुछ नहीं होता, जीजी। आप चलकर खाइए। मैं सच कह रहा हूँ, मेरी इच्छा नहीं है।

(जीजी एक क्षण खड़ी रहती हैं, फिर धीरे-धीरे जाने लगती हैं।)

अजित : जाएँ तो बत्ती बन्द करती जाइए। रोशनी से बड़ी गर्मी लगती है !

(रंगमंच पर एकदम अंधकार हो जाता है। कुछ पल बाद घड़ी में बारह के घंटे बजते हैं। भीतर से शोभा का प्रवेश। बत्ती जलाती है तो देखती है कि अजित सोफे पर ही सो गया है। बीच की मेज पर अप्पी की तस्वीर पड़ी है। उसे उठाती है, देखकर फिर किताबों की अलमारी पर रख देती है। एक क्षण अजित को देखती रहती है, फिर बत्ती बुझाकर भीतर चली जाती है।)

तृतीय अंक

पहला दृश्य

(कुछ महीने बाद। सवेरे का समय अजित का ड्राइंग रूम नए ढंग से सजा हुआ है, कुर्सियों की संख्या अधिक है। नए ग़िलाफ़, पर्दे आदि लगे हुए हैं। भीतर से जीजी का प्रवेश। नंबर मिलाकर फ़ोन करती हैं।)

जीजी : हलो-ऽ।—कौन, रग्घू ? साहब हैं ? ज़रा उन्हें बुला देना।—हाँ-ऽ। मैं जीजी बोल रही हूँ, जयंत। बोलो, तुमने क्या तय किया! —क्या कहा, मुश्किल है आना।—ठीक है, तो मैं फिर दावत ही रोके देती हूँ।—नाराज़ मैं क्या हो रही हूँ, नाराज़ तो तुम हो। हाँ—हाँ—देखो, जयंत, यह घर अजित का ही नहीं, शोभा का और मेरा भी है। शोभा कल शाम को तुम्हें बुलाने गई। कहो तो आज मैं आ जाऊँ। शोभा की नौकरी पक्की होने की दावत तुम्हारे बिना हो नहीं सकती।—तुम आओ तो सही, न हो जाए अजित शर्म से पानी-पानी तो कहना। तुम्हें मेरे सिर की क़सम है, जयंत, आज

तुम नहीं आए तो समझ लूंगी कि जीजी और शोभा तुम्हारे लिए मर गईं।—हाँ—हाँ, तुम थोड़ी-सी देर के लिए ही आना, पर आना ज़रूर। तुम्हें मेरे सिर की क़सम है—जीजी की बात नहीं टालते। तो आ रहे हो ? अच्छा।

(टेलीफोन रखती हैं। शोभा का प्रवेश, उसने अन्तिम बात सुन ली है।)

शोभा : किसे बुला रही हैं, जयंत को ?

जीजी : हाँ, वह मान गया है, थोड़ी देर को आएगा ज़रूर।

शोभा : क्यों बुलाया आपने उसे ? मैं कल शाम को जयंत को बुलाने गई इस बात पर क्या-क्या सुनाया है इन्होंने, जानती हैं आप ? मैं अभी फ़ोन कर देती हूँ कि कोई ज़रूरत नहीं है आने की।

(फ़ोन की ओर बढ़ती है। जीजी बीच में ही रोक लेती हैं।)

जीजी : शोभा, पागलपन मत करो। तुम सारी बात मुझ पर छोड़ दो। मैं चाहती हूँ आज की यह दावत केवल तुम्हारी नौकरी पक्की होने की ही नहीं, अजित और जयंत की सुलह की भी हो।

शोभा : ये और सुलह ! जिसका दिल ईर्ष्या और सन्देह की आग से जल रहा हो वह क्या दोस्ती करेगा, और क्या दोस्ती निभाएगा !

जीजी : मैं जानती हूँ, शोभा, तुम अजित के प्रति बहुत कटु हो उठी हो। पर यह तो सोचो कि बेकारी के इन तीन महीनों में वह किस भीषण यातना से गुज़रा है। अब उसका नियुक्ति-पत्र आ गया। अब धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा। कल जब मैंने दावत की बात कही तो खुशी-

खुशी राज़ी हो गया या नहीं !

शोभा : और शाम को ही फिर दिमाग़ खराब हो गया ।

जीजी : सारी चीज़ पहले जैसी स्थिति में आए, इसमें समय तो लगेगा ही—पर अब तुम भी अपना रवैया बदलो । तीन महीने से तुमने तो अजित को काट ही रखा है एक तरह से ।

शोभा : मैंने ? या उन्होंने मुझे काट रखा है ?

जीजी : समझ में नहीं आता किसे दोष दूं ? लगता है जैसे कोई बुरे ग्रह तुम लोगों पर आए हुए थे । लेकिन अब वे टल गए । देख लेना अजित की यह नौकरी तुम्हारे लिए नई ज़िन्दगी लाएगी ?

शोभा : नई ज़िन्दगी ? मैं तो अब रात-दिन नई ज़िन्दगी की ही कामना करती हूँ—इस ज़िन्दगी—

(नौकर का प्रवेश)

नौकर : बीबीजी, चलकर दाल देख लीजिए ।

जीजी : चलो, मैं चलती हूँ । (शोभा से) मिठाई और कोका-कोला का काम तुम करती आओ । सोच रही थी चार-छः जनों को और बुला ही लेती । क्या फ़रक पड़ता है, जहाँ आठ वहाँ बारह ।

शोभा : छोड़िए, जीजी ! सच पूछें तो मेरा तो आठ का भी मन नहीं था । ऐसी स्थिति में किसे अच्छा लगता है दावत करना ? अब तो आप यही देख लीजिए कि आनेवालों में से किसी का अपमान न हो !

जीजी : तुम इसकी चिन्ता मत करो, मैं अभी अजित को समझा देती हूँ ।

(जीजी भीतर चली जाती हैं । शोभा बटुआ लेकर बाहर निकल जाती है । नौकर दरवाज़ा बन्द करके भीतर

जाता है। धीरे-धीरे रोशनी हल्की हो जाती है, फूल लगे हुए फूलदान रख जाता है। भीतर से अजित आता है, हाथ में अगरबत्तियाँ और माचिस लिये हुए। जलाकर आधी बत्तियाँ एक तरफ लगाता है। आधी जली हुई अगरबत्तियाँ लिये दूसरी ओर जाता है, बीच में रस्सी से पैर अटक जाता है, गिरते-गिरते बचता है। नीचे (झुककर अप्पी की रस्सी उठाता है।)

अजित : यह रस्सी यहाँ पटक गई! अभी गिरते-गिरते बचा। पता नहीं इस लड़की को कब अक़ल आएगी!

(बत्तियाँ लाकर रस्सी लिए-लिए भीतर जाता है। घंटी बजती है। अजित आकर दरवाजा खोलता है। श्री तथा श्रीमती शुक्ला का प्रवेश।)

शुक्ला : बधाई हो—बधाई हो, अजित!

(शोभा का प्रवेश)

अजित : बधाई आप मुझे दे रहे हैं या शोभा को?

शुक्ला : तुम्हें? तुम्हें किस बात की, एकदम शोभा जी को दे रहे हैं। यों थोड़े बहुत हक़दार तुम भी हो तो सही।

अजित : चाहो तो मुझे भी बधाई दे सकते हो। वर्मा शैल से मेरा नियुक्ति-पत्र आ गया है।

शुक्ला : (हाथ मिलाते हुए) अरे वाह! क्या खूब! यह तो तुमने बड़ी अच्छी खबर सुनाई। हम तो, यार, बिल्कुल ही उम्मेद छोड़ चुके थे।

(श्री तथा श्रीमती चावला का प्रवेश)

शुक्ला : आओ, आओ।—यार चावला, अजित का भी नियुक्ति-पत्र आ गया।

चावला : सच? कब?

अजित : कल ही आया है। पहली से शुरू करना है।

चावला : बधाई—बधाई ! भई, मान गए तुम्हें। उन्होंने भी सोचा होगा कि कम्बख़्त ज़िद ही करके बैठ गया है तो नौकरी दो और जान छुड़ाओ। (सब हँस पड़ते हैं)

शुक्ला : मैं तो, अजित तुम्हें लेकर कुछ चिन्तित हो गया था। तीन जगह तुम्हारी बातचीत क़रीब-क़रीब तय हुई और तीनों जगहें तुमने महज़ बेवक़ूफ़ी में छोड़ दीं। मुझे तो लगने लगा था कि यह नौकरी तुम्हें नहीं मिली तो तुम बेकार ही रह जाओगे।

श्रीमती शुक्ला : रह भी जाते तो क्या था ? आपके यहाँ तो शोभा जी चला लेती हैं। यह तो एक महीने भी बेकार रह जाएँ तो हमारी तो भूखों मरने की ही नौबत आ जाए।

(श्री तथा श्रीमती चौधरी का प्रवेश)

अजित : आइए, चौधरी साहब !

चौधरी : मुबारक हो, शोभा जी ! भई, बड़ी खुशी है हमें तो। अपनों में से कोई बढ़ता है तो बड़ा अच्छा लगता है। फिर इस उम्र में प्रिंसिपल होना—सचमुच बड़ी बात है। (अजित से) क्यों अजित, तुम्हारा भी कुछ हुआ या नहीं।

शोभा : इनका भी कल बर्मा शैल से नियुक्ति-पत्र आ गया।

चौधरी : तुम्हें मुबारकबाद देने वाला नहीं हूँ, समझे। एक पार्टी में ही तुम सब चुकाना चाहते हो, सो चौधरी नहीं मानने का (सब हँसते हैं)

(जीजी का प्रवेश। सब को नमस्कार करती हैं)

चौधरी : जीजी, लगता है आपके घर तो खुशी जैसे छप्पर फाड़कर आई है। अकेले-अकेले सारी चीज़ें पचाने की कोशिश मत कीजिए, बदहज़मी हो जाएगी !

जीजी : (हँसते हुए) अकेले क्यों ?—खुशी क्या अकेले मनाने

की चीज़ हैं ?

(नौकर पीने की चीज आदि लेकर आता है। अजित और शोभा देते हैं। जीजी फिर भीतर चली जाती हैं।)

शुक्ला : मुझे तो अजित, भरोसा ही नहीं हो रहा कि तुम्हें नियुक्ति-पत्र मिल गया !

अजित : दिखाऊँ क्या ? (उठकर मेज की ओर बढ़ता है)

चौधरी : अरे यार, ठीक है। मान लिया तुम्हें नौकरी मिल गई। (अजित खिसिया-सा जाता है)

श्रीमती चौधरी : शोभाजी, वैसे तो शायद साल-भर में नौकरी पक्की करते हैं, पर आपकी तो जल्दी ही कर दी। साल तो आपको शायद सितंबर में होगा। तक़दीर वाली हैं आप ! (स्वर में हल्का-सा व्यंग उभर आता है)

चावला : तक़दीर वाली ? (हंसता है)

शुक्ला : अजित, यह बताओ यार, किससे सिफ़ारिश करवाई थी अपनी ?

शोभा : सिफ़ारिश? सिफ़ारिश किससे करवाएँगे ? आखिर इनका इतने सालों का तजुर्बा भी तो था—

चावला : शोभाजी, आज के ज़माने में सिफ़ारिश कोई ऐसी बुरी बात नहीं है जिसे छिपाया जाय। सभी जानते हैं कि आजकल नौकरी योग्यता से नहीं, सिफ़ारिश से मिलती है।

शोभा : हाँ, होता है ऐसा, पर सब जगह तो ऐसी बात नहीं है !

चावला : आप ऐसा कह रही हैं, शोभाजी ?

शोभा : हाँ, मैं कह रही हूँ, कहिए !

चावला : देखिए, बुरा मानने की बात नहीं है। पर आपको खुद जयंत के कहने से नहीं मिली ? वरना तीन साल के तजुर्बे पर—

शोभा : (हल्के-से आवेश के साथ) मान लिया मिली पर मिलने से ही क्या होता है। वाद में तो मैंने—

चावला : (वात काटकर) वाद की वात आप छोड़िए !

शुक्ला : शोभाजी, आपकी तरकीव तो हम मानते हैं। जयंत के द्वारा आपने नौकरी कर ली और वाद में उस साहनी को उल्लू वना लिया।

चौधरी : वना क्या लिया, वह तो है ही उल्लू !

शुक्ला : भई, उल्लू वनने से ही यदि वह सव मौज मारने को मिल जाए तो मैं भी उल्लू वनने को तैयार हूँ। मज़े करता है कम्वख्त ! गोपियों में कृष्ण कन्हैना वना फिरता है !

शोभा : (गुस्से में) क्या मतलव है आपका ? क्या कहना चाह रहे हैं आप ?

शुक्ला : ओह, माफ़ कीजिए, शोभाजी, आप उसे अपने ऊपर मत लीजिए, मैं तो आम वात कर रहा था साहनी के वारे में। वदनाम तो अव वह है ही !

श्रीमती चौधरी : अरे वावा, वदनाम ! वस भगवान वचाए उससे तो ! (शोभा का चेहरा तमतमा जाता है। अजित बड़ी तीखी नजरों से उसे देखता है। शोभा दूसरी ओर मुँह फेर लेती है।)

चौधरी : (प्रसंग वदलते हुए) ऐसी की तैसी साहनी की। हमें तो शोभाजी वड़ी खुशी होती है आपकी तरक्क़ी देखकर।

श्रीमती चावला : मुझे तो खुशी के साथ ईर्ष्या भी होती है।

चावला : खाली वैठे-वैठे ईर्ष्या करने से क्या होता है ? तुम भी कुछ करो। इन्होंने जिंदगी में एक ही चीज़ सीखी है। ग़रीव चावला पर हुकूमत करना, सो वखूवी करती है।

(सब हँस पड़ते हैं। शोभा उठकर भीतर जाती है।)

शुक्ला : जयंत नहीं आया अभी तक ?

चौधरी : हाँ, उसे तो इस दावत में सबसे पहले आना चाहिए था। क्यों अजित ?

अजित : पता नहीं, आता ही होगा शायद।

(बात टालने के लिए उठकर भीतर चला जाता है।)

चौधरी : यार शुक्ला, तुम आज बड़ी बदतमीजी कर गए।

श्रीमती चौधरी : इसमें बदतमीजी की क्या बात है ?

(शोभा का प्रवेश)

चौधरी : शोभाजी, अब तो आप बाहर का एक चक्कर मार आइए अजित विदेशी कंपनी में गया तो आप विदेश ही आइए। इससे एक कदम आगे रहना चाहिए आपको !

शुक्ला : आजकल तो ज़माना ही औरतों के आगे रहने का है। मैं तो स्वर्ण से इतना कहता हूँ कि तुम भी कुछ करो, पर—

श्रीमती शुक्ला : पर क्या, तुम्हारे चार बच्चों को सम्हालते-सम्हालते कचूमर निकल गया मेरा तो। अब तो मैं इस बात की खुशी मना सकती हूँ कि इस सबके बावजूद मैं पागल नहीं हुई !

(अजित का प्रवेश)

शुक्ला : हाँ, तो शोभाजी, क्या इरादा है आपका ? विदेश जाने की दावत कब खिलाएँगी ?

शोभा : अभी कैसा विदेश ? पहले अपने को उस योग्य तो बना लूँ।

चावला : कौन पूछता है आजकल योग्यता को ! तिकड़म लगाइए असली मोहरा पकड़िए—

(जयंत का प्रवेश)

चौधरी : आओ, आओ जयंत, तुम्हारी ही कसर थी। तुम्हारे बिना यह दावत कुछ जम नहीं रही थी।

(जयंत का अभिवादन करता है। अजित एक बार उसकी ओर देखता है, फिर नजरें हटा लेता है।)

चौधरी : जयंत, मैं शोभाजी से कह रहा था कि अब इन्हें विदेश का एक चक्कर लगा आना चाहिए, क्यों ?

जयंत : हाँ, बड़ी अच्छी बात है !

श्रीमती चौधरी : फिर तो भिजवाइए न आप ! हम खुद कुछ नहीं कर सके तो कम से कम यह गर्व तो कर सकें कि हमारे बीच में से कोई तो इतना आगे बढ़ा।

जयंत : मैं कैसे भिजवा सकता हूँ ?

श्रीमती चौधरी : अब जयंत बाबू, यह खाकसारी छोड़िए कि मैं किस लायक हूँ। साहनी साहब आपके आदमी हैं। आपका तो एक इशारा भर काफ़ी है, फिर यों भी तो शोभाजी पर काफ़ी मेहरबान—

शोभा : (व्यंग से) देखती हूँ, मेरे भविष्य में मुझसे ज्यादा दिलचस्पी तो आप लोगों की है। आप जैसे शुभचिंतक हैं तो विदेश भी पहुँच जाऊँगी किसी दिन। क्या बात है उसमें ?

चावला : सो कहने की ज़रूरत नहीं है, शोभाजी ! आप जाएँगी, ज़रूर जाएँगी, और बहुत जल्दी ही जाएँगी। आप कहें तो हाथ देखकर बताऊँ आपका ?

शुक्ला : आप नहीं जाएँगी तो ये लोग (श्रीमती शुक्ला, श्रीमती चावला आदि की ओर संकेत करता है) जाएँगी जो सारा दिन घर में बैठी-बैठी अपने बच्चों और पतियों में ही मगन रहती हैं। आदमी में हिम्मत होनी चाहिए।

श्रीमती शुक्ला : (चिढ़कर) हिम्मत नहीं है तो न सही, कम से कम अपनी

इज्जत तो लेकर बैठे हैं !

शोभा : (क्रोध से) आप क्या कहना चाह रही हैं, श्रीमती शुक्ला ? साफ़-साफ़ कहिए न।

श्रीमती शुक्ला : तुम तुनकती क्यों हो, शोभा ? मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं कह रही। आजकल जिसे औरतों की हिम्मत कहते हैं, उसी की बात कह रही थी। औरत ज़रा-सा अपने को ढीला छोड़ दे तो कहाँ की कहाँ जा सकती है। औरतें क्या, आजकल तो आदमी भी अपनी बीवियों के बूते पर तरक्क़ी करना बुरा नहीं समझते।

शोभा : (आवेश में) हाँ, जिनके पास अपना कुछ नहीं होता उन्हें तो तरक्क़ी के साथ सभी रास्ते अपनाने पड़ते हैं।

चावला : और यह पहचानना बड़ा मुश्किल है कि आदमी की तरक्क़ी में कितना उसका निज का हाथ है और कितना—

जयंत : (व्यंग से) पर किसी की तरक्क़ी को हम अपना सिरदर्द बनाएँ ही क्यों ?

(जीजी का प्रवेश)

जीजी : चलिए खाना तैयार है (जयंत को देखकर) तुम कब आए, जयंत ? इतनी देर तक कहाँ अटके रहे ?

जयंत : बस, यों ही ज़रा काम आ गया था।

चौधरी : (उठते हुए) बड़ी देर से मैं तो सुगंध से ही पेट भर रहा था। चलिए, अब खाने पर धावा बोला जाए।

(सब लोग उठकर भीतर जाते हैं। भीतर से बोलने की आवाजें आती हैं। धीरे-धीरे रोशनी कम हो जाती है, आवाज मंदी पड़ती जाती है। फिर आवाज़ एकदम बंद, रंगमंच पर अन्धकार। रात के दस के क़रीब बजते हैं। शोभा भीतर से आकर बत्ती जलाती है, कमरा ठीक करती है। तभी घंटी बजती है। शोभा दरवाजा खोलती

है। अजित का प्रवेश। सोफ़े पर बैठकर जूते खोलता है।)

शोभा : छोड़ आए चौधरी साहब को ?

अजित : छोड़ आया। (कुछ ठहरकर) तो हो गई आपकी दावत की हविस पूरी ?

(शोभा केवल अजित को घूरती है, जवाब नहीं देती।)

अजित : चलो, एक तरह से अच्छा ही हुआ। आज तुम्हारा एक भ्रम तो दूर हुआ।

शोभा : कौन-सा भ्रम ?

अजित : मैं कहता था तो तुमको लगता था कि मैं शक्की हूँ, दक़ियानूसी हूँ। (आवेश बढ़ जाता है) सुन लिया आज तो साफ़-साफ़ मुँह पर ही कह गए। सच बात कहने से तुम किसे-किसे रोकोगी, और कब तक रोकोगी ?

शोभा : क्या सोचते हैं, क्या कह गए ?

अजित : अच्छा-ऽ—! तो अभी भी समझ में नहीं आया ?

शोभा : मेरे पास करने को बहुत काम हैं। बेकार ही बैठी-बैठी बातों के अर्थ नहीं लगाया करतीं।

अजित : हाँ-ऽ-ऽ-। आप तो बड़ी कामकाजी हैं, बेकार और निकम्मा तो मैं हूँ। पर शोभाजी, जो बातें दिन के उजाले की तरह साफ़ हैं, उनका अर्थ लगाने के लिए बैठकर मग़ज़मारी नहीं करनी पड़ती, समझीं! (कुछ ठहरकर) बच्चा-बच्चा जानता है कि जयंत की वजह से तुम्हें यह नौकरी मिली है, उस लफंगे साहनी को खुश करके नौकरी पक्की हुई है। जयंत अपनी पत्नी छोड़ चुका है, वह अकेला है और दोस्ती की आड़ में—

शोभा : (बीच में ही चीख़-सी पड़ती है) अजित, होश सम्हालकर बात करो। (कांपने-सी लगती है) शर्म नहीं आती तुम्हें इस तरह की बातें करते हुए ? तुम समझते हो मैं इतनी

नीच हूँ ! —

अजित : नीचता की इसमें क्या बात है ? अपनी महत्वाकाँक्षा को पूरी करने के लिए आदमी सब कुछ करता है। क्या हो गया यदि साहनी साहब एक बार मीटिंग के बहाने अपने बँगले पर बुला लेते हैं या कि—(ठहर जाता है)

शोभा : कह लो, कह लो, रुक क्यों गए ?

अजित : इसलिए कि मैं अभी इतना बेशर्म और बेहया नहीं हुआ हूँ। तुम्हें जिन चीज़ों के करने में शर्म नहीं आती, मुझे कहने में भी शर्म आती है।

(शोभा हाथ का काम छोड़कर अजित के सामने गुस्से से काँपती हुई आकर खड़ी हो जाती है।)

शोभा : देखो अजित, दो महीने से जो कुछ भी तुम्हारे मन में उमड़-घुमड़ रहा है उसे कह डालो। आज कुछ भी मन में मत रखो। मैं भी तो देख लूँ कि किस स्तर तक तुम उतर सकते हो। (अजित तीखी नजरों से शोभा को देखता रहता है) मुझे जयंत ने काम दिलवाया है तो दुनिया भर की बातें तुम्हें सूझ रही हैं। पर जानते हो तुम्हें यह नौकरी किसके बूते पर मिली है ? (अजित की भृकुटि चढ़ जाती है आँखों में हल्का-सा प्रश्न उभर आता है) इसमें भी कोई मतलब ढूँढो। यह तो जयंत का बड़प्पन है कि रात-दिन एक कर दिया, पता नहीं किस-किस का अहसान लिया, पर एक शब्द तक मुँह पर नहीं लाए, और एक तुम हो कि—

अजित : बकवास बन्द करो। तुम सोचती हो जयंत ने मुझे नौकरी दिलवाई है ? क्या है जयंत ? ऐसी कौन-सी बड़ी हस्ती है जो मुझे नौकरी दिलवाएगा ? यह नौकरी कोई महिला विद्यालय के प्रिंसिपल की है जो जयंत दिलवा

देगा !

शोभा : प्रमाण देखना चाहते हो, दिखलाऊँ वे सारी चिट्ठियाँ !

अजित : सबकी नज़रों में तुम गिर चुकी हो, तो अब तुम मुझे गिराना चाहती हो—

(जीजी का प्रवेश । हक्की-बक्की-सी देखती हैं ।)

जीजी : क्या बात है ? क्यों हल्ला मचा रखा है ?

अजित : (चीख़कर) इसे मेरे सामने से ले जाइए जीजी । मैं इस औरत की शक्ल नहीं देखना चाहता ।

जीजी : होश में आओ, अजित ! तुम्हारा दिमाग़ तो ख़राब नहीं हो गया है ? (शोभा को पकड़ती है)

शोभा : (जीजी का हाथ छुड़ाते हुए) मैं एक मिनट भी इस घर में रहना नहीं चाहती, जीजी । ये बेकार नहीं होते तो कभी की घर छोड़कर चली जाती । कौन रह सकता है ऐसे शक्की आदमी के साथ !

अजित : अच्छा, तो तुम मुझ पर दया करके यहाँ रह रही थीं, मुझे खिलाने के लिए ?

शोभा : हाँ-ऽ- । तुम्हें खिलाने के लिए । तीन महीने से यह घर मेरे ही बूते पर चल रहा था, मालूम है ? सारा अपमान सहकर भी उस स्थिति में मैंने जाना—

अजित : अपने को बेचकर नौकरियाँ हासिल करने वाली के मुँह से मान की बात सुनकर हँसी आती है—

जीजी : तुम यहाँ से चलो, शोभा । (पकड़कर जबरदस्ती भीतर ले जाने लगती है । जाते-जाते अजित से) तुम पहले अपने दिमाग़ का इलाज करवाओ, फिर बात करना ।

शोभा : मैं इस घर में नहीं रहूंगी, जीजी—एक दिन भी नहीं रहूँगी—(जीजी उसे जबरदस्ती ले जाती है)

(अजित जोर-जोर से कश खींचकर सिगरेट पीता है,

परेशान-सा कमरे में चक्कर लगाता है। धीरे-धीरे अंध-कार हो जाता है।)

(दूसरा दृश्य)

(संध्या के सात बजे। अजित कमरे में टहल रहा है। बाहर से जीजी का प्रवेश। अजित मानो उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहा था, कुछ पूछना चाह रहा है, पर पूछता नहीं।)

जीजी : मैं मिलकर आ रही हूँ शोभा से (अजित केवल जीजी की ओर उत्सुकता से देखता है) वह आने को तैयार नहीं है। वह अब नहीं आएगी !

अजित : ठीक है। (सिगरेट फेंकते हुए) मैंने तो आपसे पहले ही कहा था, जाना बेकार है। क्यों गईं थीं आप ?

जीजी : (क्रोध से) क्यों गई थीं ? सूरत देखी है अपनी शीशे में ? हालत देखी है घर की, उस मासूम बच्ची की ? रो-रोकर बेचारी पड़ गयी। तुम उसके बाप हो ! सुन लो अजित, शोभा के बिना मुझसे भी कुछ नहीं होने का !

अजित : तो क्या करूँ मैं ? आपसे नहीं होता तो आप चली जाइए ? मैं भी ऑफिस जाना छोड़ दूँगा। कह दूँगा मेरी बच्ची बीमार है, उसकी माँ उसे छोड़ गई—मर गई। (एकदम फूट पड़ता है)

जीजी : (बहुत ही स्निग्ध स्वर में) अजित ! सब कुछ समझते हो, महसूस करते हो, फिर क्यों बेकार की ज़िद किए बैठे हो ? सारे शहर में बदनामी हो रही है। मेरा तो सिर फिर गया है, कुछ भी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ ? वहाँ गई तो साहनी साहब बैठे थे ?

अजित : कह रहे होंगे कि होटल में क्यों ठहरी हैं, मेरी कोठी पर आ जाइए ! ये लोग तो ऐसे मौकों की ताक में ही रहते हैं। महिला विद्यालय—

जीजी : फिर वही बात ? तुम इतने शक्की क्यों हो गए हो, अजित ? इस बात के सिवाय क्या तुम्हारे दिमाग़ में और कोई बात ही नहीं आती ? जानते हो, क्या कह रहे थे ! कह रहे थे कि इस स्थिति से तो कॉलेज़ की बड़ी बदनामी होती है—प्रिंसिपल का असर दूसरी लड़कियों पर (रुक जाती है और अजित को देखती है, वह बड़ी उत्सुकता से जीजी को देखता रहता है) शोभा ने कह दिया यह उसका व्यक्तिगत मामला है। और यदि कॉलेज की बदनामी का सवाल है तो वह इस्तीफ़ा दे देगी !

अजित : क्या-ऽ-?

जीजी : (आवेश में) क्या क्या कह रहे हो। जो कुछ देख-सुन कर आ रही हूँ। बल्कि जयंत साहनी साहब को समझा भी रहा था और उसके व्यवहार पर नाराज़ भी हो रहा था।

अजित : ओह, तो वह भी वहाँ पहुँचे हुए हैं !

जीजी : (गुस्से से) देख रही हूँ कि तीन महीने की बेकारी ने तुम्हें इतना दुर्बल और शक्की बना दिया है कि—

अजित : बेकारी—बेकारी—! हाँ मैं तीन महीने से बेकार था। बेकारी ने मुझे शक्की बना दिया है ! आपको भी जितना सुनाना हो सुना लीजिए ?

जीजी : अजित, मुझे तुम्हारी नौकरी से और बेकारी से कोई मतलब नहीं। तुम नौकरी में थे तो मैंने अपने लिए गहने नहीं गढ़वा लिये थे, और बेकार रहे तो मैं भूखों नहीं मर गई, समझे ? मुझे तुम्हारे घर से कुछ चाहिए

भी नहीं, बस यही चाहती हूँ इस घर का बुरा न हो, वरना मुझे यह घर भी छोड़ देना पड़ेगा। (स्वर भर्रा जाता है)

अजित : (एकदम उठकर जीजी के पास जाकर) जीजी, यह आप क्या कह रही हैं ? ऐसी बातें भी आप के दिमाग़ में क्यों आईं ? कौन कहता है कि आप—

जीजी : किसी के कहने की ज़रूरत नहीं है। मैं क्या समझती नहीं ? आई हूँ तबसे बराबर ये कोशिश करती रही हूँ कि इस घर का कुछ अमंगल न हो। तुम दोनों को समझाती-बुझाती रही हूँ, पर सब बेकार। कहीं कोई ऐसा ठोस कारण नहीं, कोई बात नहीं। फिर भी घर है कि टूटता ही जा रहा है, तुम दोनों दूर होते ही जा रहे हो। बताओ, मेरी मनहूस छाया नहीं है तो क्या है इस सबके पीछे ? मुझे भेज दो भैया—वापस कानपुर ही भेज दो।

अजित : (बहुत स्नेह से) जीजी, आप यह सब कह-सोचकर मुझे और अधिक दुखी बनाना चाहती हैं तो ज़रूर बनाइए। पर आपको जाने कहीं नहीं दूँगा। इतनी बड़ी दुनिया में आपके सिवाय आज मेरा है ही कौन ? मैंने आपसे माँ का प्यार पाया है, दोस्त का विश्वास पाया है। आप भी छोड़ जाएँगी तो क्या होगा मेरा ? (गला भर्रा जाता है)

जीजी : (आँसू पोंछते हुए) यदि तुम सचमुच ही मुझे रखना चाहते हो तो जाकर शोभा को ले आओ ! अप्पी को तुमने जाने नहीं दिया, अपनी ज़िद की सज़ा उस बच्ची को क्यों दे रहे हो ? माँ के रहते उसे बे-माँ का क्यों कर रहे हो ? कैसे बाप हो तुम ?

अजित : जीजी, मैंने किसी को जाने के लिए नहीं कहा, आने के लिए ही कहने क्यों जाऊँ ? वह भी तो माँ है, उसे

अपनी बच्ची का खयाल नहीं ? क्यों नहीं आ जाती वह ?

जीजी : क्यों आये ? तुम चाहते हो कि तुम उसे अपमानित करते रहो और वह चुपचाप सहती जाए ?

अजित : अपमानित ! अपमानित तो उसने मुझे किया है ! यह जानते हुए भी कि मेरा और जयंत का झगड़ा हो गया है वह बराबर उसके यहाँ जाती रही है, शायद यह दिखाने के लिए कि मुझसे अलग भी उसका व्यक्तित्व है ! यह अपमान नहीं है मेरा ? कौन-सा पति इस अपमान को बर्दाश्त करेगा ? जयंत के साथ ऐसा होता तो वह करता ! (आवेश में आ जाता है)

जीजी : हाँ, वह जाती रही। कोई छिपाकर नहीं, मुझसे कहकर जाती रही।

अजित : कह देने भर से ही तो कोई ग़लत बात सही नहीं हो जाती।

जीजी : ग़लत बात ? जानते हो, वह वहाँ क्यों जाया करती थी ? तुम्हारी नौकरी के लिए, समझे ? तुमने जयंत का अपमान किया, उस पर झूठा आरोप लगाया। क्यों करता वह तुम्हारी नौकरी के लिए कोशिश ? वह कोई देवता नहीं है ? मेरा तो जयंत के बड़प्पन के सामने सिर झुक गया और तुम हो कि—

अजित : (व्यंग से) बड़प्पन ? हूँ-ऽ-ऽ-।

(भीतर से नौकर का प्रवेश)

नौकर : अप्पा बिटिया जग गई, रो रही हैं। उनका माथा तो बड़ा गरम हो रहा है।

(जीजी एकदम उठकर भीतर जाती हैं। पीछे-पीछे अजित भी जाता है। कुछ देर रंगमंच खाली रहता है। फिर

भीतर से जीजी आती हैं। टेलीफ़ोन उठाकर नंबर मिलाती हैं।)

जीजी : हलो-ऽ-। जी, ग्यारह नंबर के कमरे में दीजिए। हलो-ऽ-ऽ-। कौन शोभा ? मैं जीजी बोल रही हूँ, शोभा। देखो, अप्पी का बुखार तेज़ हो गया है। उठते ही ममी-ममी करके रो रही है। अपनी बच्ची की खातिर ही तुम आ जाओ, शोभा। एक बार उसकी हालत दख जाओ, फिर जो भी तुम्हारी समझ में आए करना।— हाँ, तुरन्त आओ! अजित को मैं डॉक्टर को लेने के लिए भेज रही हूँ—तुम तुरंत आओ!

(टेलीफ़ोन रखकर भीतर चली जाती है। भीतर से अजित का प्रवेश। बाहर जाने के लिए तैयार होकर आया है। मेज से गाड़ी की चाबी उठाता है। नौकर आता है।)

नौकर : मालकिन ने कहा है आते समय मौसमी भी लेते आइए एक दर्जन!

अजित : ठीक है!

(अजित का प्रस्थान। जीजी आती हैं)

जीजी : साहब चले गए ?

नौकर : अभी-अभी निकले हैं।

जीजी : अरे, ग्लूकोस की कहना ही भूल गई। तू ला सकेगा ?

नौकर : नाम लिख दीजिये तो ला सकेंगे, बाकी—

जीजी : हाँ-हाँ लिखे देती हूँ। (भीतर जाती है। पीछे-पीछे नौकर भी चला जाता है।)

(शोभा का प्रवेश। एक क्षण को कमरे में चारों ओर देखती है, फिर भीतर के दरवाजे की ओर बढ़ती है।) दरवाजे पर जरा-सा ठिठक जाती है फिर पर्दा खोल कर

जाती है। भीतर से नौकर का प्रवेश। बाहर से अजित और डॉक्टर का प्रवेश।)

नौकर : बीबीजी आ गई सरकार। बस तुरत ही आई हैं।
(अजित हल्की-सी दुविधा में रहता है कि भीतर जाए या नहीं, फिर डॉक्टर को लेकर चला जाता है। नौकर भी डाक्टर का बैग लेकर पीछे-पीछे जाता है, फिर लौट आता है। गद्दी आदि ठीक करता है सोफे पर पड़ा अजित का बैग उठाकर ठीक जगह रखता है। भीतर से अजित और डॉक्टर का प्रवेश।)

डॉक्टर : चिंता की कोई बात नहीं है, मामूली बुखार है। मैं दवाई दिए देता हूँ—ठीक हो जाएगी। (बैठकर दवाई लिखता है) तीन-तीन घंटे में इसे दीजिए। खाने को अभी रस या साबूदाना आदि ही दीजिए—और तो बस।
(अजित फ़ीस देता है। दरवाजे तक छोड़कर लौट आता है।)

अजित : (नौकर से) यह दवाई लेते आओ।
(बटुए में से रुपये देता है। नौकर का प्रस्थान। भीतर से जीजी आती हैं।)

जीजी : गए डॉक्टर साहब ? क्या बताया ?

अजित : चिंता की कोई बात नहीं है। मामूली बुखार है! दो-एक दिन में ठीक हो जाएगा। बल्लू को दवाई लेने भेजा है।

जीजी : यह तो मुझे भी मालूम था कि चिंता की कोई बात नहीं होगी, पर—(अजित अखबार उठाकर पढ़ने लगता है) कुछ देर भीतर जाकर ही बैठो न! (अजित आँख उठाकर जीजी को देखता भर है) देखो अजित, अब तो समझ से काम लो! अपनी ज़रा-सी ज़िद से तीन-तीन

ज़िंदगियाँ मत ख़राब करो।

अजित : ऐसा क्या कर रहा हूँ, जीजी ? मैं तो चुपचाप बैठा हूँ।

जीजी : हाँ, तो क्यों बैठे हो चुपचाप ? करो न कुछ।

अजित : क्या करूँ जीजी ? कहा न सब ठीक हो जाएगा। आप देखिए, सब ठीक हो जाएगा।

जीजी : अब तुमको जयंत से भी बोलचाल शुरू कर देनी चाहिए अजित ! जानते हो। मैं जब शोभा के पास गई थी उसने आने से इनकार कर दिया था। उसे विश्वास ही नहीं हुआ था कि अप्पी बीमार है। घर आकर फ़ोन किया तो जयंत ने उसे जैसे-तैसे यहाँ के लिए तैयार किया, खुद अपनी गाड़ी में यहाँ आकर छोड़ गया। वरना तो वह फ़ोन से भी नहीं आती शायद। (अजित चुप रहता है) देखो अजित, अधिक मैं कुछ नहीं कहूँगी, पर इतना जान लो, अब कुछ भी गड़बड़ हुई तो सारा दोष तुम्हारा होगा। शोभा एक बार लौट आई है, अब उसे मनाना तुम्हारा काम है। अपनी ग़लती मानकर आदमी छोटा नहीं होता, समझे ?

(नौकर का प्रवेश)

नौकर : यह एक दवाई तो यहां मिली नहीं, साहब !

अजित : देखूं ? (देखता है)

जीजी : तुम गौतम फ़ार्मेसी से ले आओ !

अजित : जाता हूँ।

(बाहर जाता है। जीजी और नौकर दरवाजा बंद कर के भीतर जाते हैं। धीरे-धीरे अंधकार होता है।)

तीसरा दृश्य

(कमरा ख़ाली पड़ा है भीतर से शोभा और डाक्टर

का प्रवेश ।)

शोभा : तो डॉक्टर साहब मैं इसे अपने साथ कुछ समय के लिए बाहर ले जा सकती हूँ ?

डाक्टर : हाँ-हाँ, अब तो यह बिल्कुल ठीक है । एकदम ठीक । पर आप इसे कहाँ ले जाएँगी ?

शोभा : (एक क्षण समझ नहीं पाती क्या बताए) मुझे ज़रूरी काम से ज़रा कलकत्ते से बाहर जाना है, इसीलिए पूछा था—

डाक्टर : हाँ-हाँ—। खुशी से ले जा सकती हैं। ऐसा बच्ची को कुछ था भी नहीं । एक ही बच्ची है न, इसलिए शायद आप लोग बहुत जल्दी घबरा जाते हैं। एक और होना चाहिए !

(शोभा के होठों परफी की सी मुस्कान फैल जाती है। डाक्टर चले जाते हैं। शोभा भीतर जाती है । अजित बाहर से आता है । सोफे पर बैठकर जूते उतारता है ।)

अजित : बल्लू—ओ बल्लू—!

(जीजी का प्रवेश)

जीजी : आ गए तुम ?

अजित : अप्पी कैसी है ?

जीजी : एकदम अच्छी है ।

(बल्लू का प्रवेश)

नौकर : जी, आपने बुलाया, साब ?

अजित : चाय लाओ, बल्लू ? (नौकर का प्रस्थान)

जीजी : अजित, चार दिन हो गए शोभा को आए ! एक बार भी तुम उससे नहीं बोले । भीतर आना तुमने एक तरह से बंद कर रखा है । आखिर क्या चाहते हो तुम ?

अजित : मैं ? मैं तो कुछ नहीं चाहता, जीजी !

जीजी : समझदारी से काम लो, अजित। डोरी इतनी ही खींचनी चाहिए कि टूटे नहीं।

अजित : (खिन्न-से स्वर में) डोर तो टूट चुकी है, जीजी !

जीजी : पागल है, कहीं कुछ नहीं टूटा। जो कुछ टूटा भी है उसे जोड़ लो !

अजित : क्या करूँ, कैसे जोड़ लूँ ?

जीजी : यह सब मेरे बताने की बातें नहीं हैं, तुम्हारे अपने समझने-करने की बातें हैं ! शोभा भी तो आजकल कुछ नहीं बोलती। पहले तो मन की बात कहा करती थी, अपना सुख-दुख बताया करती थी। अब तो हाँ-ना के सिवाय उसके मुँह से भी कुछ नहीं निकलता। सारे दिन बैठी-बैठी कुछ सोचती रहती है। कभी-कभी अप्पी को चिपटा कर रोती है। उसका दर्द मैं समझती हूँ, अजित वह लौटकर आई और तुमने फूटे मुँह से बात तक नहीं की उससे ! कितना अपमानित महसूस कर रही होगी वह !

अजित : मेरी कुछ समझ में नहीं आता, जीजी, मैं क्या बात करूँ ? (कुछ ठहरकर) कॉलेज में इस्तीफ़ा भेज ही दिया क्या ? कॉलेज तो नहीं जाती !

जीजी : हो सकता है भेज दिया हो ! मैंने कहा न वह मुझसे भी कोई बात नहीं करती है आजकल। (नौकर चाय रखकर चला जाता है। जीजी चाय बनाती हैं) शोभा अब किसी की बात नहीं सुन सकती, चाहे साहनी साहब हों चाहे लाट साब ! वे कॉलेज के सेक्रेटरी हैं, निजी बातों से उन्हें क्या मतलब ?

(नौकर का फिर प्रवेश)

नौकर : मालकिन, पीछे वालों की बिटिया आपको बुलाने आई

है, उधर की बीबीजी ने बुलाया है।

जीजी : किसे, मुझे ?

नौकर : जी, कोई जरूरी काम है !

जीजी : अच्छा, चलो।

(नौकर और जीजी का प्रस्थान। अजित अकेला बैठा चाय पीता रहता है। भीतर से शोभा का प्रवेश। एक क्षण खड़ी रहती है।)

शोभा : (बैठते हुए) मैं बना लूँगी। (चाय बनाने लगती है)

अजित : अप्पी अब तो बिल्कुल ठीक है न ? डॉक्टर आए थे ?

शोभा : आए थे, कह गए कि बिलकुल ठीक है। अब कहीं भी आ-जा सकती है।

अजित : तो कल से उसे स्कूल जाना शुरू कर देना चाहिए।

शोभा : मैं उसे अपने साथ ले जाना चाहती हूँ।

अजित : (माथे पर बल पड़ जाते हैं) कहाँ ?

शोभा : जहाँ भी मैं रहूँ। चाहती हूँ वह मेरे साथ ही रहे। पहले भी आपने व्यर्थ ही ज़िद करके उसे रोक लिया। मेरे बिना वह रह नहीं सकती।

अजित : (एक मिनट शोभा को देखता रहता है) देखो शोभा, मैं जानता हूँ कि तुम्हारे किसी भी मामले में दखल देने का अधिकार मुझे नहीं है। पर अप्पी के मामले में तो कम से कम—

शोभा : यही सब कहकर तो आपने पहले भी रख लिया था। फिर क्या हुआ ? इस बार मैं उसे साथ लेकर ही जाऊँगी !

अजित : (एक मिनिट ठहरकर) सुना है तुमने नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया है। जान सकता हूँ अप्पी के रहने की क्या व्यवस्था होगी ;

शोभा : नौकरी चली भी जाएगी तो अप्पी को रखने की सामर्थ्य मुझमें है। विश्वास रखो, पापा के प्यार के अलावा उसे किसी चीज़ की कमी महसूस नहीं होने दूँगी। (स्वर भारी हो उठता है)

अजित : (व्यंग से) पापा के प्यार की कमी। हुँ-ऽ! (शोभा का मुँह क्षण भर को तमतमा-सा ज ाता है। फिर अपने को संयत कर लेती हैं) और यदि नहीं भेजूँ तो ;

शोभा : आपकी यह ज़िद अप्पी के साथ कितना बड़ा अन्याय होगा, यह भी आपने सोचा है? अभी मैं यहाँ थी, आ गई। हो सकता है मैं यहाँ न रहूँ या कि यहाँ रहकर भी आना पसंद नहीं करूँ, तब? हम अपनी कमियों और ग़लतियों की सज़ा इस बेक़सूर बच्ची को क्यों दें?

अजित : तुम यह कह रही हो? बच्ची का इतना खयाल है तुम्हें?

शोभा : क्यों नहीं है? खयाल न होता तो चली आती, समझे?

अजित : (तौलती हुई नजरों से देखकर) अप्पी को भेजना तो संभव नहीं होगा, शोभा!

शोभा : क्यों?

अजित : कोई आवश्यक नहीं कि मैं तुम्हारे हर प्रश्न का उत्तर दूँ ही।

शोभा : (आवेश में) और यदि मैं भी कहूँ कि मैं अप्पी को लेकर ही जाऊँगी तो?

अजित : किस अधिकार से?

शोभा : मैं उसकी माँ हूँ। उसे ले जाने के लिए इससे बड़े किसी अधिकार की ज़रूरत नहीं है। बच्चे पर पहला हक़ माँ का होता है।

अजित : ओ-हो-ऽ— ? तो कानून की बात कर रही हो? तब तो,

शोभाजी सोचता हूँ फिर वहीं उसका फ़ैसला हो तो ज्यादा अच्छा होगा।

शोभा : तुम उसके पापा हो। झूठे अभिमान ने तुम्हें इतना अंधा बना दिया है कि तुम्हें उसका भी खयाल नहीं ?

अजित : यह बात तो मुझे तुमसे कहनी चाहिए।

शोभा : मैं जानती हूँ कि तुम अप्पी को क्यों नहीं भेजना चाहते हो।

अजित : क्या जानती हो ?

शोभा : तुम सोचते हो कि तुम अप्पी के बहाने मुझे इस अपमान-जनक स्थिति में रहने को मजबूर कर सकोगे। पर ऐसा होगा नहीं, ऐसा हो नहीं सकता !

अजित : बड़े खूबसूरत मुग़ालते हैं अपने बारे में !

शोभा : अपने बारे में कुछ भी हो, पर तुम्हें मैं खूब अच्छी तरह समझती हूँ। एक बार फिर सोच लो। अप्पी का खयाल करके सोच लो—

अजित : कहा न, मैं तो सोच चुका, अब तो सोचने की बारी तुम्हारी है !

शोभा : (ठंडी साँस लेकर) ठीक है, तो मैं अकेली ही चली जाऊँगी। जहाँ मैंने अपने भीतर की पत्नी को मारा है, वहीं अपने भीतर की माँ को भी मार दूँगी। बच्ची की कुर्बानी से यदि तुम्हारा अहं संतुष्ट होता है, तो उस मासूम बच्ची की भी कुर्बानी करो !

(शोभा गुस्से से भीतर चली जाती है। अजित उस ओर ही देखता रहता है फिर दोनों हाथों में सिर थाम लेता है। एक क्षण बाद उठकर भीतर चला जाता है। धीरे-धीरे अन्धकार। थोड़ी देर बाद शोभा भीतर से आती है, बत्ती जलाती है। उसके हाथ में एक अटैची और कुछ

फ़ाइलें आदि हैं। वह बड़ी उदास-सी नज़रों से कमरे में देखती है। अप्पी के जमे हुए खिलौने, उसकी तस्वीर, सब पर नजर ठहरती हैं फिर एकदम तेजी से निकल जाती है।)

(पर्दा गिरता है)


बिना दीवारों के घर
मन्नू भण्डारी